स्वदेशी पत्रिका

वर्ष–19, अंक–10, आश्विन–कार्तिक 2068, अक्टूबर 2011

संपादक
विक्रम उपाध्याय

कार्यालय
धर्मक्षेत्रा, सेक्टर–8, बाबू गेनू मार्ग रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022 से प्रकाशित
दूरभाष : 011–26184595
स्वदेशी जागरण समिति की ओर से ईश्वर दास महाजन द्वारा कॉम्पीटेंट बाइन्डर्स (प्रिंटिंग यूनिट), नवीन शाहदरा, दिल्ली–32 से मुद्रित।

आवरण कथा-4

सरकार यह कहती है कि 32 रुपये प्रतिदिन खाना, इलाज और अन्य मद में खर्च करने वाले व्यक्ति को गरीबी रेखा से ऊपर माना चाहिए तो यह क्रूर मजाक ही है।

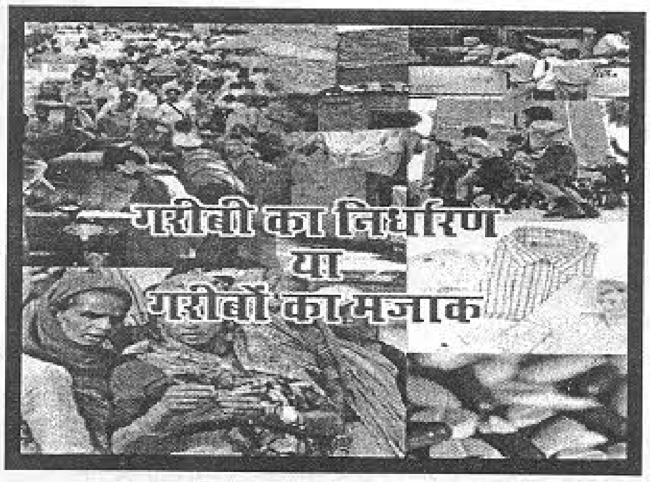

अनुक्रम

आवरण लेख
गरीबी का निर्धारण या गरीबों का मजाक
– विक्रम उपाध्याय /4

कृषि
फिर खेती में मंडराया संकट
– देविन्दर शर्मा /7

वाद–विवाद
32 रुपए में कैसे जिएगा आम आदमी
– राजेश सिंह /10

गरीबी
गरीबों के साथ क्रूर मजाक
– गिरीश अवस्थी /13

दृष्टिकोण
आर्थिक चुनौतियों से कैसे निपटेगा भारत
– डॉ. अश्विनी महाजन /16

अर्थव्यवस्था
यूरोप के संकट का आधार
– डॉ. भरत झुनझुनवाला /19

मुद्दा
निर्यात की डगर पर बढ़ती मुश्किलें
– जयंतीलाल भंडारी /22

पर्यावरण
नदियों के प्रवाह की रक्षा
– भारत डोगरा /25

अंतर्राष्ट्रीय
पानी के लिए दादागिरी
– उमेश प्रसाद सिंह /27

भ्रष्टाचार
भ्रष्टाचार को बढ़ावा देती संप्रग सरकार
– बलवीर पुंज /29

पड़ताल
रामदेव व अन्ना के आंदोलन के बाद कांग्रेस
– डॉ. सूर्यप्रकाश अग्रवाल /31

पाठकनामा /2, रपट /34, आन्दोलन /36

पाठकनामा

किसानों को नहीं मिलता अपनी उपज का उचित मूल्य

'जय जवान जय किसान' का नारा जब लाल बहादुर शास्त्री ने दिया था। तब जवानों ने भारत की रक्षा और किसानों ने खेती द्वारा भारत की जनता को भरपूर अनाज दिया था। परंतु आज के हालात देखा जाए तो जवानों को सरकार द्वारा काफी कुछ मिलता है लेकिन किसानों को दो वक्त की रोटी खाना भी दूभर हो गया है। कारण खेती आज किसानों के लिए 'जी का जंजाल' बन गई है। अगर खेती नहीं करते तो एक वक्त की रोटी भी नसीब नहीं होगी। कारण देश में आज लगातार खेती के संसाधनों की कीमत दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है लेकिन किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य नहीं मिलता। दूसरी ओर महंगाई दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है और बिचौलिए और दलाल इस महंगाई का भरपूर फायदा उठा रहे है। इसमें प्रशासनिक तंत्र के अधिकारियों की भी मिली भगत है। किसान अपने खेतों को बेच रहे है। खेत वाली जमीन पर अवैध निर्माण और बिल्डरों द्वारा फ्लैट बनाने की प्रक्रिया आज पूरे भारत में चल रही है। सोचने वाली बात है अगर इसी तरह घरों की संख्या बढ़ती गई तो वो दिन दूर नहीं जब खेती करने के लिए कोई जमीन ही नहीं बचेगी। आज से दस साल पहले दिल्ली से सटे इलाकों में खेती होती थी। इन इलाकों में आज शानदार फ्लैटों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है। इंदिरापुरम से लेकर मेरठ तक अवैध निर्माण और बिल्डरों का कब्जा हो चुका है। कारण स्पष्ट है कि वर्तमान सरकार किसानों का कोई हित ही नहीं चाहती। जिसके कारण किसान अपने खेत बेच रहे हैं। अगर सरकार ने जल्दी इस पर रोक नहीं लगाई तो आने वाले वक्त में भारत को अनाज भी विदेशों से आयात करना पड़ेगा। साथ ही 'जय जवान जय किसान' के नारे से किसान गायब ही हो जाएगा।

– राकेश कुमार मीडिया अपार्टमेंट, गाजियाबाद

लुप्त होती खेती और जंगल

भारत भविष्य में एक महाशक्ति के रूप में उभरेगा! क्या हम इसके निए तैयार हैं, मेरे हिसाब से बिल्कुल नहीं!! आज भारत की आबादी 121 करोड़ के पार हो चुकी है। इतने लोगों को रहने के लिए जगह, खाने के लिए खेती और पानी ये सभी चीजें हमें इस धरती से ही मिलती है। लेकिन हमारे पास इतनी जमीन कहां बची है? कभी किसी ने सोचा। मेरा गाँव ज्यादा बड़ा नहीं है। पहले जहां गांव के चारों तरफ खेती होती थी और दूसरी तरफ जंगल होता था। उस जंगल में जगली पशु भी रहते थे, परंतु आज जंगल और खेती दोनों ही धीरे–धीरे गायब होते जा रहे हैं। खेती वाली जगह पर कारखाने और बिल्डिंग बन रही है जिसके कारण जंगल भी धीरे–धीरे समाप्त होते जा रहे हैं। जब मेरे गांव का यह हाल है तो हमारे देश में अन्य जगह भी यही सब चल रहा है। मनुष्य का स्वाभाविक रूप है कि वह लोभी होता है। लेकिन अपने लोभ के कारण वह पेड़–पौधों, वनस्पति और पशु–पक्षियों को नष्ट कर रहा है। अगर हमने लोभ नहीं छोड़ तो आने वाले वक्त में कैसे महाशक्ति बन पाएंगे। जब अनाज और खुली हवा नहीं मिलेगी तो कैसे हम जी पाएंगे। – **प्रणय अशोकराव साखकर**, क्वाटर नं. एम–23/5, घोषताल टाउनशिप, पोस्ट – सास्ती, तहसील – राजुरा, जिला – चंद्रपुर (महाराष्ट्र)

आवश्यक नहीं कि इस अंक के भीतर प्रस्तुत लेखकों के विचार स्वदेशी पत्रिका के संपादक मंडल के विचारों से मेल खाते हों। पाठकों की जानकारी के लिए उन्हें यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

संपादकीय कार्यालय

"धर्मक्षेत्र" शिव शक्ति मन्दिर, सैक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022
दूरभाष : 011–26184595 • ई–मेल : swadeshipatrika@rediffmail.com
अगर आप घर बैठे स्वदेशी पत्रिका चाहते हैं तो डिमांड ड्राफ्ट, मनीऑर्डर अथवा चेक द्वारा शुल्क *'स्वदेशी पत्रिका'* दिल्ली के नाम भेजने का कष्ट करें।

वार्षिक सदस्यता शुल्क : 100 रुपए
आजीवन सदस्यता शुल्क: 1,000 रुपए

यदि शुल्क भेजने के उपरांत भी आपको पत्रिका समय पर उपलब्ध नहीं हो पा रही है तो तुरंत पत्रिका कार्यालय को सूचित करें।

(ध्यानार्थ : कृपया अपना नाम व पता साफ अक्षरों में लिखें)

उन्होंने कहा

मुझे महात्मा कहना गलत है। महात्मा का ओहदा बहुत बड़ा है और मैं इस लायक नहीं हूँ।

– अन्ना हजारे

32 रुपये रोजाना पर केवल जानवर ही जी सकते हैं। देश में 80 प्रतिशत आबादी गरीब है। सरकार को उन्हें लाभ पहुंचाना चाहिए। 32 रुपये रोजाना खर्च करने वाले अमानवीय हालात में जीते हैं।

– एन.सी. सक्सेना
राष्ट्रीय सलाहकार परिषद के सदस्य

वर्तमान आर्थिक नीतियों में सुधार किया जाए और काला धन वापस लाया जाए तो देश फिर से बड़ी आर्थिक शक्ति बन जाएगा।

– रामदेव बाबा

संपादकीय

मितव्ययता का नाटक

प्रधानमंत्री ने अपने मंत्रिमंडलीय सहयोगियों के विदेश दौरे पर रोक लगा दी है। ऐसा उन्होंने आर्थिक मंदी के खतरे को देखते हुए किया है। यह खबर जनता को इसलिए दी गई ताकि सरकार यह संदेश दे सके कि वह मितव्ययता से काम कर रही है। फालतू के खर्चे में जबर्दस्त कटौती कर रही है। प्रधानमंत्री संभवतः यह सोंच रहे होंगे कि उनके इस कदम से जनता मानसिक रूप से राहत महसूस करेगी कि सरकार वाकई उनकी तकलीफों से चिंतित है और उनसे उबरने के प्रयास में लगी हुई है। आम आदमी ऐसा सोंचता भी यदि एक सप्ताह पहले ही उसके पास यह खबर नहीं होती कि यूपीए सरकार के मंत्रियों ने पिछले एक साल में अपने विदेशी दौर पर 42 करोड़ रुपये खर्च किए हैं। हवाई जहाज से लेकर होटलों के खर्चे बेहिसाब हुए। इससे देश को क्या हासिल हुआ, जनता को क्या मिला प्रधानमंत्री को यह बताना चाहिए। ऐसा नहीं कि पहले मंत्रियों के विदेश दौरे नहीं हुए पहले की सरकारों ने इस मद में कोई खर्च नहीं किए। पर पहली बार ऐसा हुआ कि मनमोहन सिंह के मंत्रियों में विदेश दौरे के लेकर होड़ देखी गई। खासकर कमलनाथ और प्रफुल्ल पटेल जैसे मंत्रियों ने विदेश दौरे का नया रिकार्ड बनाया। कानून मंत्री से लेकर गैर परम्परागत ऊर्जा स्रोत के मंत्री तक विदेश भागते रहे। सरकार की ही सूचनाओं के अनुसार कमलनाथ ने विदेश मंत्री एस.एम. कृष्णा से भी ज्यादा बार विलायत की यात्रा की। कमलनाथ का विदेश प्रेम किसी की भी समझ से परे है। प्रधानमंत्री को कई बार कमलनाथ की यात्राओं पर स्पष्टीकरण की आवश्यकता पड़ी है। यूपीए सरकार के मंत्रियों का विदेशी दौरा कई बार कुछ गंभीर सवाल भी खड़ा करता है। कम से कम आधा दर्जन मंत्री ऐसे हैं जो बार–बार निजी खर्चे पर भी विदेशों की खूब यात्रा करते हैं। यूपीए सरकार के मंत्रियों के लिये दुबई सबसे पसंदीदा जगह है। लगभग एक दर्जन मंत्री दुबई और संयुक्त अरब अमीरात के अन्य शहरों में आते–जाते रहते हैं। अब सबको मालूम है कि दुबई किस चीज के लिये जाना जाता है। दुनिया के तमाम रईसजादे या तो वहां मस्ती के लिये जाते हैं या फिर दुबई धन को ठिकाने लगाने का कुख्यात ठिकाना है। हमारे यह कहना कतई नहीं है कि हमारे मंत्री भी मौज–मस्ती या निवेश के लिये दुबई जाते हैं। लेकिन इतना तो तय है कि बार–बार दुबई जाने का मकसद राष्ट्रीय हित या जनता के दुःख को कम करने का प्रयास नहीं हो सकता। बहरहाल प्रधानमंत्री के इस फैसले का स्वागत किया जाना चाहिए और यह माना जाना चाहिए कि देर आये दुरुस्त आये। क्योंकि मंत्रियों के देश में न होने के कारण और नीतियों पर उनकी कहीं पकड़ न होने के कारण जनता गंभीर परिणाम भुगत रही है। लगभग सभी प्रमुख मंत्रालयों में कामकाज जैसे–तैसे चल रहा है। अभी हाल ही में एक खबर आई कि कम से कम आधा मंत्रालयों में सचिव का पद खाली है यानि ये मंत्रालय अपने कामकाज को सुचारू रूप से नहीं कर रहे हैं। सरकार की खामियों का भुगतान जनता कर रही है। लगातार कई साल अच्छे मानसून होने के बावजूद किसानों की जीतोड़ मेहनत के बावजूद, अच्छी उपज हासिल होने के बावजूद भी महंगाई कम नहीं हो रही है। ऊपर से अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय बाजार भी दम तोड़ रहे हैं। उनका असर भी कहीं न कहीं हमारी अर्थव्यवस्था पर पड़ेगा। ऐसे में सरकार के मंत्रियों का सैर–सपाटा और कामकाज के प्रति लापरवाही देश के लिये बहुत भारी पड़ेगी। अब यह कहने का समय समाप्त हो गया। प्रधानमंत्री मनमोहन बहुत ईमानदार व स्पष्ट छवि के हैं। वे एक अच्छे अर्थशास्त्री हैं और अर्थव्यवस्था की नब्ज पर उनकी अच्छी पकड़ है। प्रधानमंत्री के सभी गुणों का प्रभाव देश की राजनीति पर नहीं पड़ा है। उनकी ईमानदार छवि के बावजूद भी उनके मंत्रिमंडल के लोग घोटाले करते रहे। उनके अर्थशास्त्री होने के बावजूद देश भयंकर महंगाई की चपेट में है। अर्थव्यवस्था पर कथित रूप से उनकी पकड़ होने के बावजूद हम फिर आर्थिक मंदी की तरफ धकेले जा रहे हैं। अब देखें उनके मितव्ययी होने का फायदा देश को किस रूप में पहुंचता है। जनता तो अपनी गाढ़ी कमाई दाल–रोटी के गुजारे में ही लुटा रही है। जीवन इतना कठिन हो गया है कि एक अच्छा–खासा कमाने वाला व्यक्ति भी त्राहि–त्राहि कर रहा है। त्रासदी यह है कि मनमोहन जैसे प्रधानमंत्री को जमीनी हकीकत पता नहीं है। इसीलिये कई बार सरकार को शर्मिंदगी का सामना करना पड़ता है। सरकार जिम्मेदारी से काम करने के बजाय बड़ी–बड़ी समस्याओं पर भी गैर जिम्मेदारी से पेश आती है। सरकार में शामिल कुछ लोग अपनी बयानबाजी के कारण भी सरकार की किरकिरी कराते रहते हैं। खाद्य पदार्थों की मूल्य वृद्धि के मामले में शरद पवार के बयान से कई बार सरकार किनारा कर चुकी है। योजना आयोग के उपाध्यक्ष मोंटेक सिंह अहलूवालिया भी सरकार की किरकिरी का कारण बन रहे हैं। अभी हाल ही में उन्होंने जनता की जख्मों पर एक और चोट किया, जब उन्होंने कहा कि पेट्रोलियम पदार्थों की मूल्य वृद्धि देश के लिये अच्छा है। हद तो तब हो गयी जब मोंटेक सिंह ने यह कहा कि 32 रूपए रोजाना कमांने वाले लोग गरीबों की श्रेणी में नहीं आ सकते। काफी तू–तू मैं–मैं और थू–थू के बाद प्रधानमंत्री को गरीबों की पहचान के लिये नये मापदंड बनाने पड़े। अब देखें प्रधानमंत्री के नये प्रयास का क्या असर होता है।

आवरण कथा

गरीबी का निर्धारण या गरीबों का मजाक

सरकार यह कहती है कि 32 रूपये प्रतिदिन खाना, इलाज और अन्य मद में खर्च करने वाले व्यक्ति को गरीबी रेखा से ऊपर माना चाहिए तो यह क्रूर मजाक ही है। जी हां, केन्द्र सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय में एक शपथपत्र के जरिये यह बयान दिया कि उसकी नजर में 32 रूपये खर्च करने वाले लोग गरीबी रेखा से ऊपर हैं और उन्हें सामाजिक कल्याण के लिये दी जाने वाली सब्सिडी के लिये उपयुक्त नहीं माना जाना चाहिए।

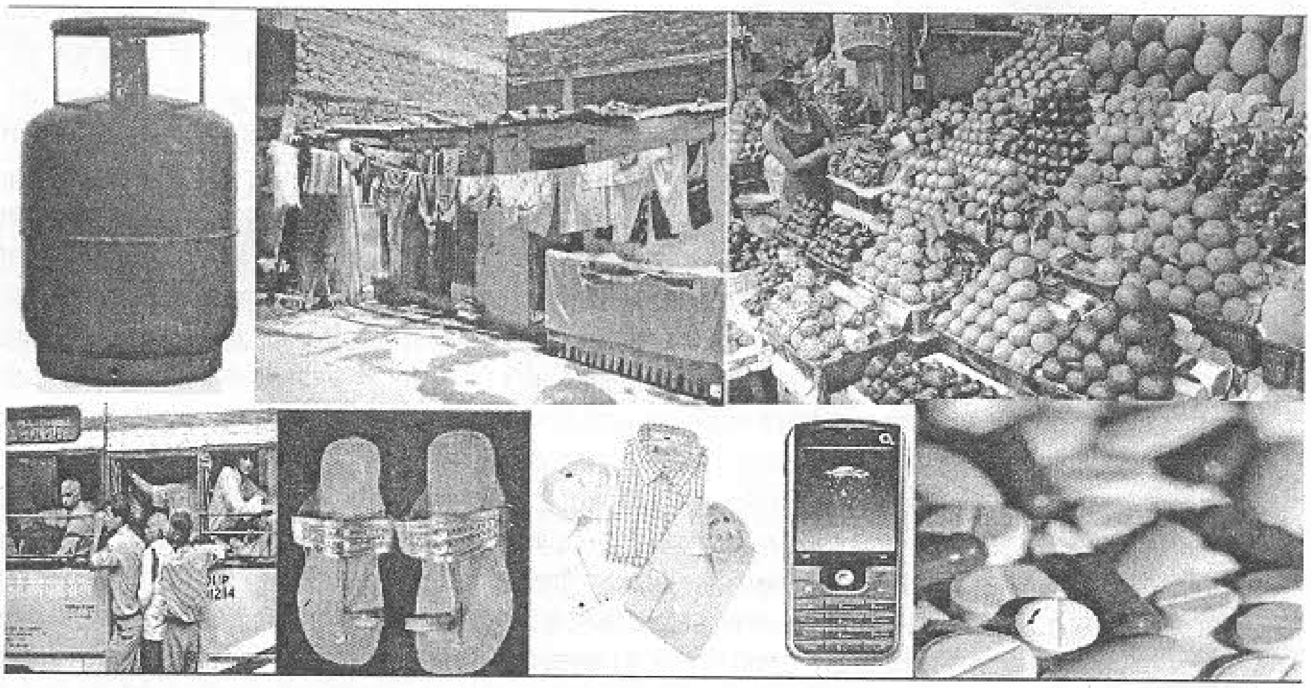

■ विक्रम उपाध्याय

सरकार हकीकत से मुंह मोड़ रही है। अपनी कमजोरियों और अक्षमताओं को जनता पर थोप रही है। योजना आयोग भी सरकार को अंधेरे में रखकर उलट पुलट सलाह दे रहा है। यह डर दिखाया जा रहा है कि सरकार सामाजिक कल्याण और रोजगार के लिये अब और धन खर्च करने की कोशिश करती है तो अर्थव्यवस्था चरमरा जायेगा जबकि भारत जैसे देश में सामाजिक कल्याण रोजगार पर आने वाले खर्च अकेले ही केन्द्र सरकार वहन नहीं करती।

देश की आबादी यदि 120 करोड़ है तो गरीबों की संख्या 60 करोड़ से ऊपर है। भले ही आंकड़ा किसी सरकारी किताब में नहीं मिलता। सरकार तो 32 करोड़ से लेकर 40 करोड़ लोगों को ही गरीबी रेखा से नीचे मान रही है। लेकिन दैनिक खर्चे और आमदनी के बीच यदि आंकलन करें तो यह आंकड़ा बिल्कुल सही दिखता है।

इसमें कोई शक नहीं कि भारत के केवल 12 फीसदी लोग ही कथित रूप से अमीरों की श्रेणी में आते हैं। शेष जनता मध्यम आय वर्ग, निम्न मध्यम आय वर्ग और निम्न वर्ग में विभाजित है। इसमें भी शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के लिये आंकड़े अलग–अलग हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 98 फीसदी लोग निम्न मध्यम आय वर्ग और निम्न आय वर्ग में ही आते हैं।

यदि भारत की कुल जनसंख्या का 60 फीसदी हिस्सा भी ग्रामीण आबादी का मानें तो यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि गरीबी की जिंदगी जीने वालों की आबादी कुल आबादी का 70 फीसदी से कम नहीं है। ऐसे में यदि कोई सरकार यह कहती है कि 32 रूपये प्रतिदिन खाना, इलाज और अन्य मद में खर्च करने वाले व्यक्ति को गरीबी रेखा से

ऊपर माना चाहिए तो यह क्रूर मजाक ही है। जी हां, केन्द्र सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय में एक शपथपत्र के जरिये यह बयान दिया कि उसकी नजर में 32 रूपये खर्च करने वाले लोग गरीबी रेखा से ऊपर हैं और उन्हें सामाजिक कल्याण के लिये दी जाने वाली सब्सिडी के लिये उपयुक्त नहीं माना जाना चाहिए।

हालांकि इस मसले पर राजनीतिक प्रतिक्रिया को देखते हुए सरकार ने आनन–फानन में गरीबी निर्धारण के नये मापदंड गढ़ दिये। ग्रामीण विकास मंत्री जयराम रमेश ने मोर्चा संभाला और योजना आयोग के साथ बैठकर इस मसले को सुलझाने का प्रयास किया ताकि सरकार की और किरकिरी न हो लेकिन सर्वोच्च न्यायालय में दायर हलफनामे ने देश में एक नई बहस नींव रख दी है, जिसमें इस बात पर ज्यादा चर्चा हो रही है कि गरीब किसे मानें। सरकार की नीतियों ने लगभग 10 करोड़ नये लोगों को गरीबी रेखा से नीचे ला पटका है।

2004–05 के आंकड़े के अनुसार 10 करोड़ नये लोग गरीबी रेखा के नीचे आ चुके हैं। तेंदुलकर समिति की रिपोर्ट इस बात पर मुहर लगाती है।

शहरी क्षेत्रों में 32 रूपये नहीं, 200 रूपये प्रतिदिन कमाने वाले भी गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन कर रहे हैं। योजना आयोग ने अपने स्पष्टीकरण में कहा कि उसके आंकलन का आधार यह था कि अमूमन एक परिवार में 5 या 6 लोग होते हैं और 32 रूपये प्रतिदिन प्रत्येक व्यक्ति पर खर्च का अर्थ होता है लगभग 6000 रूपये प्रतिमाह की आमदनी।

एक तरह से देखें तो एक व्यक्ति जिसकी मासिक आमदनी 6000 रूपये महीने है उसे सैद्धान्तिक रूप से गरीबी रेखा के नीचे नहीं मान सकते हैं। लेकिन वास्तविक स्थिति ठीक इसके उलट है। आज भी प्रत्येक कमाने वाले व्यक्ति पर लगभग 5 लोग आश्रित हैं। इन सभी के भरण–पोषण की जिम्मेदारी कमाने वाले व्यक्ति पर ही होती है। यदि 6000 रूपये प्रतिमाह के आधार पर ही खर्चे का आंकलन करें तो एक परिवार मुश्किल से 10 दिन के खर्चे चला सकता है। लेकिन उसे पूरे 30 दिन उसी में गुजारा करना पड़ता है। पोषक तत्वों की बात छोड़े, आहार में उसे रोटी–नमक ही मिल जाये उसके लिये बहुत होता है। उसे भोजन में मिलने वाले कैलोरी की चिंता नहीं पेट भरने की चिंता रहती है। सरकार इससे वाकिफ है फिर भी इस तरह के हलफनामे कोर्ट में दाखिल किये जा रहे हैं तो उसका मकसद क्या है।

दरअसल कांग्रेस अपने ही खेल में

सरकार ने आनन–फानन में गरीबी निर्धारण के नये मापदंड गढ़ दिये। ग्रामीण विकास मंत्री जयराम रमेश ने मोर्चा संभाला और योजना आयोग के साथ बैठकर इस मसले को सुलझाने का प्रयास किया ताकि सरकार की और किरकिरी न हो लेकिन सर्वोच्च न्यायालय में दायर हलफ़नामे ने देश में एक नई बहस नींव रख दी है, जिसमें इस बात पर ज्यादा चर्चा हो रही है कि गरीब किसे मानें। सरकार की नीतियों ने लगभग 10 करोड़ नये लोगों को गरीबी रेखा से नीचे ला पटका है।

उलझ गयी है। बिना सोचे समझे सामाजिक योजनाओं की घोषणा और उस पर होने वाले खर्च का कोई आकलन नहीं करने के कारण सरकार अब मुसीबत में घिर चुकी है।

यह माना जा रहा है कि किसानों के ही जानी है। इसीलिये योजनाओं को इस तरह से समायोजित करने की कोशिश की जा रही है कि उसका असर खजाने पर न पड़े। कांग्रेस की यह सोच उल्टी पड़ सकती है। बढ़ती हुई मंहगाई के कारण ऐसे लोगों का जीवन काफी कठिन हो जनता पर थोप रही है। योजना आयोग भी सरकार को अंधेरे में रखकर उलट पुलट सलाह दे रहा है। यह डर दिखाया जा रहा है कि सरकार सामाजिक कल्याण और रोजगार के लिये अब और धन खर्च करने की कोशिश करती है तो अर्थव्यवस्था

यदि 6000 रूपये प्रतिमाह के आधार पर ही खर्चे का आंकलन करें तो एक परिवार मुश्किल से 10 दिन के खर्चे चला सकता है। लेकिन उसे पूरे 30 दिन उसी में गुजारा करना पड़ता है। पोषक तत्वों की बात छोड़े, आहार में उसे रोटी–नमक ही मिल जाये उसके लिये बहुत होता है। उसे भोजन में मिलने वाले कैलोरी की चिंता नहीं पेट भरने की चिंता रहती है। सरकार इससे वाकिफ है फिर भी इस तरह के हलफनामे कोर्ट में दाखिल किये जा रहे हैं तो उसका मकसद क्या है।

कर्ज माफ करने और मनरेगा जैसे रोजगार की योजनाओं ने सरकार की जेब ढीली कर दी है। यूपीए अध्यक्ष सोनिया गांधी को खुश करने के लिये सरकार ने भोजन के अधिकार का विधेयक भी पारित कराने का फैसला किया है। 120 करोड़ जनता में से 70 करोड़ जनता को निःशुल्क भोजन देने की योजना के बारे में सोचकर भी सरकार के हाथ–पांव फूल रहे हैं। इसीलिये सरकार के सिपहसलार ऐसी युक्ति निकालने की सोच रहे हैं जिससे सांप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे यानि योजना की घोषणा भी हो जाये और सरकार के ऊपर ज्यादा आर्थिक बोझ न पड़े।

इसीलिये 32 रूपये खर्च का फार्मूला सामने लाया गया। ताकि अधिकांश लोगों को भोजन के अधिकार योजना से वंचित रखा जा सके। सरकार इस समय पेट्रोल, डीजल और केरोसिन रसोई गैस के अलावा बड़े पैमाने पर खाद्य सब्सिडी भी दे रही है। जो आने वाले समय में बढ़ती चुका है। सरकारी योजनाओं से उन्हें बेदखल किया गया तो देश में गिरी हुई स्थिति उत्पन्न हो सकती है। पहले ही महंगाई वृद्धि दर दहाई आंकड़े में पहुंच चुकी है। निकट भविष्य में महंगाई पर कोई अंकुश नहीं दिखाई दे रहा।

औद्योगिक उत्पादन गिरने और निर्माण क्षेत्र में मंदी आने के कारण रोजगार के अवसर भी कम होते जा रहे हैं। ऐसे में लोगों का जीवन स्तर और निम्न होगा। आर्थिक पहिया घुमाये बिना सरकार इस समस्या से निपट नहीं सकती और सरकार के पास अभी इस क्षेत्र में कोई नयी सोच नहीं दिख रही है। घोटालों और अनियमिताओं में सरकार किसी तरह खुद को बचाये रखने में ही सारी ऊर्जा लगा रही है। ऐसे में गरीबों की खबर कौन ले। इसीलिये तरह–तरह के आंकड़े और तरह–तरह की बेवजह बहस को जन्म दिया जा रहा है।

सरकार हकीकत से मुंह मोड़ रही है। अपनी कमजोरियों और अक्षमताओं को चरमरा जायेगा जबकि भारत जैसे देश में सामाजिक कल्याण रोजगार पर आने वाले खर्च अकेले ही केन्द्र सरकार वहन नहीं करती।

सरकारी आंकड़े के अनुसार भी देश भर में सामाजिक कल्याण एवं ग्रामीण रोजगार पर आने वाले खर्च का सिर्फ फीसदी भार केन्द्र सरकार वहन करती है। शेष 80 फीसदी खर्च राज्य सरकारें वहन करती हैं। कुल बजट का लगभग 7 फीसदी ही संसाधन सामाजिक कल्याण एवं रोजगार सृजन के लिये जाता है। यह तो सरकार की अकुशलता और बिना सोचे समझे योजनाओं की घोषणा है जिसने खर्च को अनाप–शनाप बढ़ाकर यह विषम स्थिति पैदा कर दी है। महंगाई पर सरकार काबू नहीं रख पा रही है। रोजगार एवं उद्योग बढ़ाने का अवसर सरकार नहीं दे रही। वित्तीय क्षेत्र डरे और सहमे हुए हैं। ऐसे में गरीबों के साथ किये जा रहे मजाक को सिर्फ अन्याय ही कहा जा सकता है। ❑

फिर खेती में मंडराया संकट

संकट की शुरुआत आंध्र प्रदेश के ईस्ट गोदावरी जिले के उर्वर कोनासीमा क्षेत्र से हुई, जहां छह एकड़ के किसान सूर्यभगवान ने घोषणा की कि वह फसल बोने के बजाय कुली बनना पसंद करेगा। पहले भी कर्ज के भारी बोझ से दबे हुए और यह जानते हुए कि अगर इस बार भी धान की बुवाई की तो यह बोझ और बढ़ जाएगा, फसल अवकाश की उसकी अपील का जल्द ही पूरे क्षेत्र में असर नजर आने लगा. . .

■ देविन्दर शर्मा

कृषि क्षेत्र में भयावह गड़बड़ियां हो रही हैं। पंजाब, हरियाणा, आंध्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश और जम्मू–कश्मीर के करीब 40 हजार किसान केवल भारतीय स्टेट बैंक से लिए गए करीब छह सौ करोड़ रुपये के ऋण का भुगतान नहीं कर पाए। इसके बाद आंध्र प्रदेश के धान कटोरा कहे जाने वाले ईस्ट गोदावरी व वेस्ट गोदावरी जिलों के किसानों ने इस साल फसल अवकाश घोषित करते हुए धान बोने से इनकार कर दिया।

देश के दो अलग–अलग भौगोलिक क्षेत्रों में एक–दूसरे से अलग घटनाएं एक साथ घटना देश के लिए खतरे की घंटी है। चाहे पूर्वोत्तर हो या पंजाब या फिर आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु और उड़ीसा जैसे अधिक उर्वर अन्य क्षेत्र–खेती किसानों के लिए मुसीबत का कारण बनी हुई है। जिस चीज पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है वह है कि यह गुजारे का धंधा भी नहीं रह गई है।

इस संकट की शुरुआत आंध्र प्रदेश के ईस्ट गोदावरी जिले के उर्वर कोनासीमा क्षेत्र से हुई, जहां छह एकड़ के किसान सूर्यभगवान ने घोषणा की कि वह फसल बोने के बजाय कुली बनना पसंद करेगा। पहले भी कर्ज के भारी बोझ से दबे हुए और यह जानते हुए कि अगर इस बार भी धान की बुवाई की तो यह बोझ और बढ़ जाएगा, फसल अवकाश की उसकी अपील का जल्द ही पूरे क्षेत्र में असर नजर आने लगा। कुछ ही सप्ताह में, फसल अवकाश का उसका आह्वान पूरे क्षेत्र में जंगल में आग की तरह फैल गया। दो सिंचित जिलों में एक लाख हेक्टेयर से अधिक जमीन बंजर रह गई।

आंध्र प्रदेश में बड़े पैमाने पर धान की फसल होती है, किंतु इसकी सरकारी खरीद के लिए खरीद ढांचा खड़ा नहीं किया गया। मुख्यमंत्री पद पर रहते हुए

देश के दो अलग–अलग भौगोलिक क्षेत्रों में एक–दूसरे से अलग घटनाएं एक साथ घटना देश के लिए खतरे की घंटी है। चाहे पूर्वोत्तर हो या पंजाब या फिर आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु और उड़ीसा जैसे अधिक उर्वर अन्य क्षेत्र–खेती किसानों के लिए मुसीबत का कारण बनी हुई है। जिस चीज पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है वह है कि यह गुजारे का धंधा भी नहीं रह गई है।

सालोंसाल, कृषि की जानबूझ कर उपेक्षा की जाती रही है। घटती आय कृषि क्षेत्र को बर्बाद कर रही है। त्रासदी यह है कि किसानों के हाथों में और पैसा पहुंचाने के बजाय उन्हें और ऋण मुहैया कराया जा रहा है, जिससे वे कर्ज के दुष्चक्र में फंस रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि किसानों को सुनिश्चित मासिक आय का पैकेज दिया जाए।

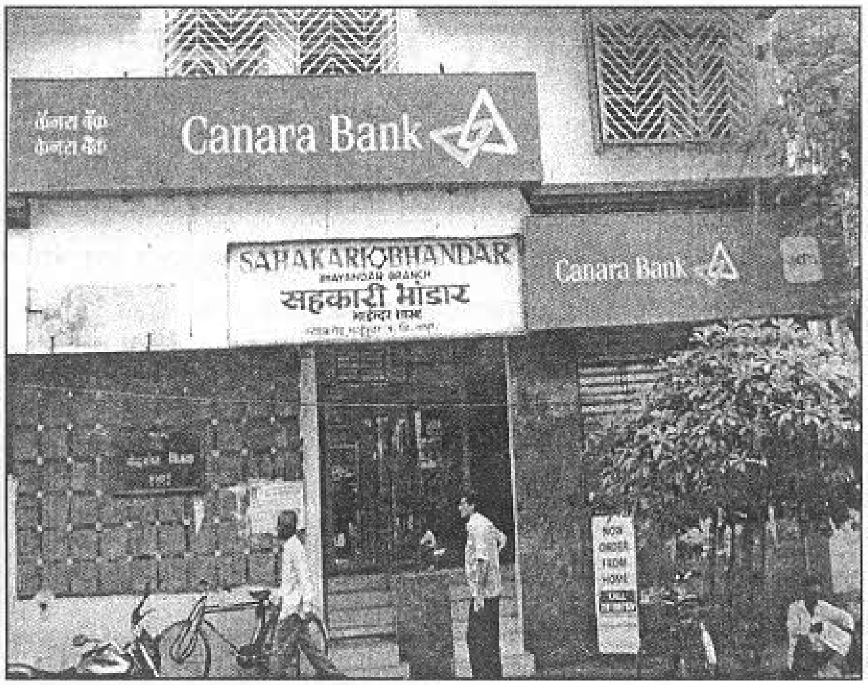

चंद्रबाबू नायडू ने एक बयान जारी किया था कि किसान खरीफ सीजन में अधिक चावल की पैदावार न करें, क्योंकि उनके पास अतिरिक्त धान के भंडारण की व्यवस्था नहीं है।

अब तक इन हालात में कोई बदलाव नहीं हुआ है। इसीलिए मुझे यह जानकर हैरानी नहीं हुई कि पिछले रबी सीजन से किसानों के पास पचास लाख टन अन्न पड़ा हुआ है, जिसकी सरकारी खरीद नहीं की गई है।

इस प्रकरण से मेरे जेहन में अर्थशास्त्रियों, नीति निर्माताओं और निजी व्यापारियों द्वारा प्रायोजित एक लोकप्रिय विचार आया है कि सरकार को खरीदारी से हाथ खींच लेने चाहिए और यह काम निजी व्यापारियों को सौंप देना चाहिए।

अगर आंध्र प्रदेश सरकार यह जानते हुए भी धान की खरीदारी से पीछे हट रही है कि निजी व्यापारी किसानों की लाचारी का फायदा उठाते हुए सस्ती दरों पर उपज खरीद रहे हैं तो मुझे यह देखकर हैरानी नहीं होगी कि फसल अवकाश का सिलसिला आने वाले सालों में और बढ़ता जाएगा।

कृषि और खाद्य मंत्रालय भी हर साल 25 फसलों का खरीद मूल्य घोषित करता है, किंतु प्रभावी खरीद केवल गेहूं और चावल की ही हो पाती है। पंजाब और हरियाणा को छोड़कर जहां मंडी में पहुंचने वाले 90 प्रतिशत गेहूं और धान की खरीदारी भारतीय खाद्य निगम द्वारा कर ली जाती है, देश के अन्य भागों में निगम

किसानों को उनकी उपज का सही दाम न मिलने के कारण ही 40 प्रतिशत किसान खेती को तिलांजलि देना चाहते हैं। पंजाब और हरियाणा जैसे अग्रणी कृषि राज्यों में भी जहां भारी मात्रा में रासायनिक खाद, कीटनाशक और भूजल का इस्तेमाल किया जाता है, कृषि घाटे का सौदा बन गई है। पंजाब और हरियाणा के किसानों ने फसल अवकाश का तो फैसला नहीं लिया है, लेकिन बैंकों के ऋण चुकाने में विफलता से उन्होंने भी खतरनाक संदेश तो दे ही दिया है।

ने खरीदारी का काम व्यापारियों के हाथों सौंप रखा है। इस व्यवस्था के कारण किसान निजी व्यापारियों के शोषण का शिकार बनते हैं। इस प्रकार सरकारी खरीद के अभाव में न्यूनतम समर्थन मूल्य बेमानी सिद्ध हो जाता है और किसानों के लिए खेती नुकसान का सौदा बन जाती है।

किसानों को उनकी उपज का सही दाम न मिलने के कारण ही 40 प्रतिशत किसान खेती को तिलांजलि देना चाहते हैं। पंजाब और हरियाणा जैसे अग्रणी कृषि राज्यों में भी जहां भारी मात्रा में रासायनिक खाद, कीटनाशक और भूजल का इस्तेमाल किया जाता है, कृषि घाटे का सौदा बन गई है। पंजाब और हरियाणा के किसानों ने फसल अवकाश का तो फैसला नहीं लिया है, लेकिन बैंकों के ऋण चुकाने में विफलता से उन्होंने भी खतरनाक संदेश तो दे ही दिया है।

दिलचस्प पहलू यह है कि इन किसानों को मात्र चार फीसदी की अनुदानित ब्याज दर पर ऋण दिया गया था। अब यह बैंक चार सौ समझौता कैंप आयोजित कर रहा है, जहां किसानों को छूट देकर उनसे रकम वसूलने का प्रयास किया जाएगा। अन्य राज्यों में भी हालात अलग नहीं हैं। कृषि क्षेत्र में बैंकों की डूबने वाली राशि बढ़ती जा रही है। चेतावनी बिल्कुल साफ है। कृषि की निरंतर उपेक्षा और अलगाव के कारण ही देश में भयानक कृषि संकट पैदा हुआ है।

समय में जब सरकारी कर्मचारियों की मासिक आय छठे वेतन आयोग के अनुसार 150 प्रतिशत बढ़ चुकी है, विधायकों और सांसदों की आय में 200 से 400 प्रतिशत की वृद्धि हो चुकी है, शिक्षा और स्वास्थ्य के खर्च आसमान छू रहे हैं और यहां तक कि गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले परिवार भी स्वास्थ्य बीमा और सार्वजनिक वितरण प्रणाली का लाभ उठा रहे हैं, केवल कृषि समुदाय ही विपन्न रह गया है।

सालोंसाल, कृषि की जानबूझ कर उपेक्षा की जाती रही है। घटती आय कृषि क्षेत्र को बर्बाद कर रही है। त्रासदी यह है कि किसानों के हाथों में और पैसा पहुंचाने के बजाय उन्हें और ऋण मुहैया कराया जा रहा है, जिससे वे कर्ज के दुष्चक्र में फंस रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि किसानों को सुनिश्चित मासिक आय का पैकेज दिया जाए। एक ऐसे समय में जब सरकारी कर्मचारियों की मासिक आय छठे वेतन आयोग के अनुसार 150 प्रतिशत बढ़ चुकी है, विधायकों और सांसदों की आय में 200 से 400 प्रतिशत की वृद्धि हो चुकी है, शिक्षा और स्वास्थ्य के खर्च आसमान छू रहे हैं और यहां तक कि गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले परिवार भी स्वास्थ्य बीमा और सार्वजनिक वितरण प्रणाली का लाभ उठा रहे हैं, केवल कृषि समुदाय ही विपन्न रह गया है। ❑

:: सूचना ::

स्वदेशी पत्रिका साम्राज्यवाद के खिलाफ एक सशक्त आवाज है। पत्रिका को ऐसे लोगों से प्रतिक्रियाएं, रिपोर्ट या आलेख की अपेक्षा है जो राष्ट्रहित में सोचते हैं और देश के स्वावलम्बन के लिए कुछ करने की इच्छा रखते है। जरूरी नहीं कि आप पत्रकार या लेखक ही हों, अपने आसपास से जुड़ी चीजों के प्रति आपकी संवदेना है और आप शब्दों में उसे लिख सकते है तो हमें अवश्य लिख भेजें। साथ ही स्वदेशी पत्रिका में छपे लेख आपको कैसे लगते हैं, क्या आप इसमें कुछ नए विषयों का समायोजन चाहते हैं कृपया हमें अवश्य अवगत कराएं। आपके विचारों को हम प्राथमिकता के साथ प्रकाशित करने का भी प्रयास करेंगे।

हमारा पता है :–

संपादक

स्वदेशी पत्रिका

'धर्मक्षेत्र', सेक्टर–8, बाबू गेनू मार्ग, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022

32 रुपए में कैसे जिएगा आम आदमी

योजना आयोग ने उच्चतम न्यायालय को बताया है कि खानपान पर शहरों में 965 रुपये और गांवों में 781 रुपये प्रति महीना खर्च करने वाले व्यक्ति को गरीब नहीं माना जा सकता है। गरीबी रेखा की नई परिभाषा तय करते हुए योजना आयोग ने कहा कि इस तरह शहर में 32 रुपये और गांव में हर रोज 26 रुपये खर्च करने वाला व्यक्ति बीपीएल परिवारों को मिलने वाली सुविधा को पाने का हकदार नहीं है।

■ राजेश सिंह

देश के अर्थशास्त्री प्रधानमंत्री की अध्यक्षता के अंतर्गत आधारभूत संरचना और मानव विकास के लिए पुख्ता योजनाएं बनाने का दावा करने वाली केन्द्र सरकार की संस्था योजना आयोग ने उच्चतम न्यायालय को बताया है कि खानपान पर शहरों में 965 रुपये और गांवों में 781 रुपये प्रति महीना खर्च करने वाले व्यक्ति को गरीब नहीं माना जा सकता है। गरीबी रेखा की नई परिभाषा तय करते हुए योजना आयोग ने कहा कि इस तरह शहर में 32 रुपये और गांव में हर रोज 26 रुपये खर्च करने वाला व्यक्ति बीपीएल परिवारों को मिलने वाली सुविधा को पाने का हकदार नहीं है।

अपनी यह रिपोर्ट योजना आयोग ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष हलफनामे के तौर पेश की है. इस रिपोर्ट पर खुद प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने हस्ताक्षर किए हैं. योजना आयोग ने गरीबी रेखा पर नया मापदंड सुझाते हुए कहा है कि दिल्ली, मुंबई, बेंगलुरु और चेन्नै में चार सदस्यों वाला परिवार यदि महीने में 3860 रुपये खर्च करता है, तो वह गरीब नहीं कहा जा सकता।

योजना आयोग के इस हास्यास्पद परिभाषा पर हो–हल्ला मचना शुरू हो चुका है। रिपोर्ट के मुताबिक, एक दिन में

एक आदमी प्रति दिन अगर 5.50 रुपये दाल पर, 1.02 रुपये चावल–रोटी पर, 2.33 रुपये दूध, 1.55 रुपये तेल, 1.95 रुपये साग–सब्जी, 44 पैसे फल पर, 70 पैसे चीनी पर, 78 पैसे नमक व मसालों पर, 1.51 पैसे अन्य खाद्य पदार्थों पर, 3.75 पैसे रसोई गैस व अन्य ईंधन पर खर्च करे तो वह एक स्वास्थ्य जीवन यापन कर सकता है. साथ में एक व्यक्ति अगर 49.10 रुपये मासिक किराया दे तो आराम से जीवन बिता सकता है और उसे गरीब नहीं कहा जाएगा। योजना आयोग की मानें तो स्वास्थ्य सेवा पर 39.70 रुपये प्रति महीने खर्च करके आप स्वस्थ रह सकते

योजना आयोग की मानें तो स्वास्थ्य सेवा पर 39.70 रुपये प्रति महीने खर्च करके आप स्वस्थ रह सकते हैं। शिक्षा पर 99 पैसे प्रतिदिन खर्च करते हैं तो आपको शिक्षा के संबंध में कतई गरीब नहीं माना जा जायेगा। यदि आप 61.30 रुपये महीनेवार, 9.6 रुपये चप्पल और 28.80 रुपये बाकी पर्सनल सामान पर खर्च कर सकते हैं तो आप आयोग की नजर में बिल्कुल भी गरीब नहीं कहे जा सकते।

हैं। शिक्षा पर 99 पैसे प्रतिदिन खर्च करते हैं तो आपको शिक्षा के संबंध में कतई गरीब नहीं माना जा जायेगा। यदि आप 61.30 रुपये महीनेवार, 9.6 रुपये चप्पल और 28.80 रुपये बाकी पर्सनल सामान पर खर्च कर सकते हैं तो आप आयोग की नजर में बिल्कुल भी गरीब नहीं कहे जा सकते।

योजना आयोग ने गरीबी की इस नई परिभाषा को तय करते सनय 2010–11 के इंडस्ट्रियल वर्कर्स के कंस्यूमर प्राइस इंडेक्स और तेंडुलकर कमिटी की 2004–05 की कीमतों के आधार पर खर्च का लेखा–जोखा दिखाने वाली रिपोर्ट पर गौर किया है।

हालांकि, रिपोर्ट में अंत में कहा गया है कि गरीबी रेखा पर अंतिम रिपोर्ट एनएसएसओ सर्वेक्षण 2011–12 के बाद पेश की जाएगी। ज्ञात हो कि उच्चतम न्यायालय ने गत 29 मार्च को 2004 के लिए निर्धारित मानदंडों के आधार पर वर्ष 2011 में गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारों का निर्धारण करने पर मनमोहन सरकार को आड़े हाथ लिया था।

कोर्ट ने योजना आयोग की सिफारिशों के आधार पर गरीबी की रेखा से नीचे रहने वालों की आबादी 36 प्रतिशत होने के सरकारी दावों पर सवाल उठाते हुए सरकार से इसका विवरण माँगा था। न्यायाधीशों का कहना था कि 2004 में दिहाड़ी मजदूरी 12 रुपए और 17 रुपए थी, लेकिन क्या आज यह वास्तविकता है। इतने पैसे में आज क्या होता है? न्यायाधीशों का यह भी कहना था कि सरकारी कर्मचारियों के वेतन में भी साल में कम से कम दो बार बदलाव होता है, लेकिन गरीबी की रेखा से नीचे जीवन

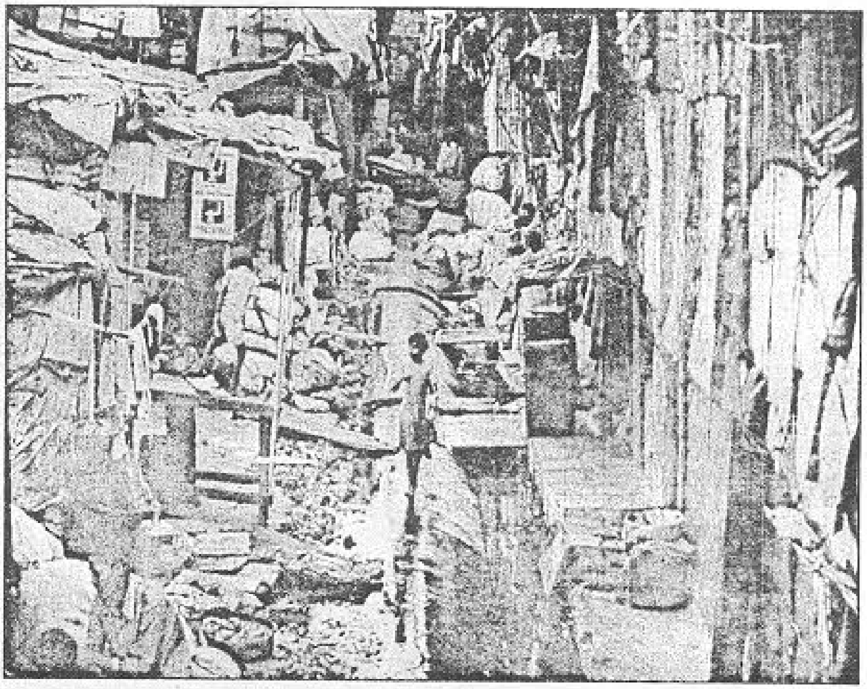

देश में वैश्वीकरण की नीतियां लागू की जा रहीं थी उस समय तमाम बुद्धिजीवियों नें जो आशंका व्यक्त की थी कि अगर वैश्वीकरण की नीतियों पर चल कर उदारीकरण और ग्लोबलीकरण को अपनाया गया तो अधिक से अधिक लोग हाशिए पर धकेल दिए जाएंगे। नतीजतन, एक ऐसी परिस्थिति निर्मित होगी जिसमें बहुत ही थोड़े से लोग अपना अस्तित्व बचा पाएंगे। गरीबों को यह चुनाव करना होगा कि वे फांसी लगाकर मरेंगे या कीटनाशक पीकर अथवा सरकारी सुरक्षाबलों के बंदूक की गोली से। क्या स्थितियां उससे अलग नजर आ रहीं हैं ?

यापन करने में मानदंडों में सात साल में कोई बदलाव नहीं करना आश्चर्य पैदा करने वाला है।

आज देश का गरीब आदमी अपने ही नीतिनिर्धारकों द्वारा तय किये गए नव–आर्थिक उदारीकरण की मार झेल रहा है। उसकी जमीन, पानी और रोजी–रोटी राज्य द्वारा कब्जाई जा रही हैं ताकि सब कुछ बडी–बडी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और धन्ना–सेठों की खनन, सेज और दूसरे बड़े–बड़े प्रोजेक्टों, आदि के लिए दी जा सकें. जहाँ एक ओर पिछले 10 सालों में देश के कारपोरेट घरानों को 22 लाख करोड रूपये (टैक्स आदि में छूट के माध्यम से) दे दिया गया वहीं देश के गरीब आदमी को सरकार द्वारा दी जा रही सब्सिडी को खत्म करने की सोची–समझी रणनीति के तहत, योजना आयोग, मनमोहन सिंह के नेतृत्व में काम कर रहा है।

अब ऐसे में उस उच्चतम न्यायालय को उन गरीबों की मदद के लिए आगे आना चाहिए, जिनके अधिकार छीनने की मंसा से योजना आयोग उच्चतम न्यायालय को गुमराह करने की कोशिश कर रहा है। कोई मनमोहन, मोंटेक अर्थशास्त्री, की

मंडली से कोई यह पूछे की आपकी सफेदी जो कि आप सभी के पहनावे में झलकती है और क्रीच टूट जाने पर तत्काल बदल दी जाती है (दिन में 3 बार) कितना खर्च आता है ? (संभवतः 23 रूपये से कई गुना ज्यादा होगा) तो आपने यह कैसे मान लिया कि देश का आम आदमी केवल 32 रूपये रोज गुजारा कर लेगा ?

जब देश में वैश्वीकरण की नीतियां लागू की जा रहीं थी उस समय तमाम बुद्धिजीवियों नें जो आशंका व्यक्त की थी कि अगर वैश्वीकरण की नीतियों पर चल कर उदारीकरण और ग्लोबलीकरण को अपनाया गया तो अधिक से अधिक लोग हाशिए पर धकेल दिए जाएंगे।

नतीजतन, एक ऐसी परिस्थिति निर्मित होगी जिसमें बहुत ही थोड़े से लोग अपना अस्तित्व बचा पाएंगे। गरीबों को यह चुनाव करना होगा कि वे फांसी लगाकर मरेंगे या कीटनाशक पीकर अथवा सरकारी सुरक्षाबलों के बंदूक की गोली से। क्या स्थितियां उससे अलग नजर आ रहीं हैं?

राष्ट्रीय आर्थिक संप्रभुता की अधोगति तथा आर्थिक व राजनीतिक प्रक्रिया से दूर रखे जाने की प्रवृत्ति के कारण कई युवा गुमराह होकर अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मजबूरन आतंकवाद और हिंसा तथा अन्य गैरकानूनी रास्ता अपनाने को बाध्य हुए हैं। इन स्थितियों के मद्देनजर क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि नक्सलवाद और कुछ नहीं, बल्कि अस्तित्व के संघर्ष में गरीबों के जवाबी प्रतिरोध का पर्याय मात्र है. सवाल यह है कि आखिर योजना आयोग के योजनाकारों के समझ में यह क्यों नहीं आता कि जिस देश में महंगाई दर 10 फीसदी की दर से बढ़ रही हो वहां का आम आदमी 32 रूपये में कैसे गुजारा कर सकता है।

वह वर्ल्ड बैंक जिसके बारे में कहा जाता है कि वह आम आदमी के बारे में नहीं सोचता वह केवल अपने निवेशकों के बारे में सोचता है नें भी गरीबी रेखा के ऊपर की न्यूनतम आय 2 डॉलर यानि 96 रूपये तय किया है और हमारे नीति निर्धारकों की नजर में प्रतिदिन 32 रूपये की आय अर्जित करने वाले गरीबी रेखा के नीचे नहीं हैं।

वैसे तो यूपीए–2 का घोषित लक्ष्य देश के आम आदमी और खासकर देश की गरीब आबादी के लिए ढांचागत सुविधाएं उपलब्ध करवाकर उनका जीवन स्तर सुधारना था, लेकिन अब वही यूपीए–2 की सरकार देश के चंद पूंजीपतियों व निजी कंपनियों का हितसाधक बन गई है. इसी के मद्देनजर गरीबी निर्धारण के भ्रामक आंकड़े उच्चतम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया है। कुल मिलाकर उच्चतम न्यायालय को हलफनामे के रूप में दी गई योजना आयोग की रिपोट से यह स्पष्ट होता है कि मौजूदा दौर में बट्टा भारी हो गया है और आदमी हल्का हो गया है। सरकार की इन्ही नीति निर्धारण के मद्देनजर चिकित्सा, शिक्षा, रोजगार, और आवास की बातें करना बेमानी है देश की गरीब जनता के सामने तो अब दो जून की रोटी का सवाल मुंह बाए खड़ा हो गया है। ❑

आज देश का गरीब आदमी अपने ही नीतिनिर्धारकों द्वारा तय किये गए नव–आर्थिक उदारीकरण की मार झेल रहा है। उसकी जमीन, पानी और रोजी–रोटी राज्य द्वारा कब्जाई जा रही हैं ताकि सब कुछ बड़ी–बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और धन्ना–सेठों की खनन, सेज और दूसरे बड़े–बड़े प्रोजेक्टों, आदि के लिए दी जा सकें।

गरीबों के साथ क्रूर मजाक

योजना आयोग ने शहरों में 32 रुपए व गांव में 26 रुपए प्रतिदिन से ज्यादा मजदूरी करने वाले लोगों को गरीबों की श्रेणी में नहीं माना है और ऐसे लोगों के लिए कमेटी ने सब्सिडी पर दिए जाना वाला अनाज देने की मनाही की है। इन परिस्थितियों में किसी से यह उम्मीद नहीं करनी चाहिए कि खाद्य सुरक्षा विधेयक जो कि संसद में चर्चा में है, पर कोई न्याय मिल पाएगा। अब आम आदमी का भला होने वाला नहीं है।

गिरीश अवस्थी

गत दिनों सुरेश तेन्दुलकर के नेतृत्व में एक बनी कमेटी में खाद्य वस्तुओं की कीमतों के बारे में शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों के लिए एक रिपोर्ट दी है। जिसे 21 सितम्बर 2011 को योजना आयोग ने भारत के सर्वोच्च न्यायालय में प्रस्तुत किया है जो कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली की प्रक्रिया पर विचार कर रहा है। इस रिपोर्ट में कहा गया है कि चार व्यक्तियों के परिवार का भोजन व रहन–सहन के लिए शहरों में 32 रुपए व ग्रामीण क्षेत्रों में 26 रुपए प्रतिदिन की मजदूरी पाने वाले लोगों को ही गरीब कहा गया है। इसके ऊपर मजदूरी करने वाले लोगों को गरीब की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है।

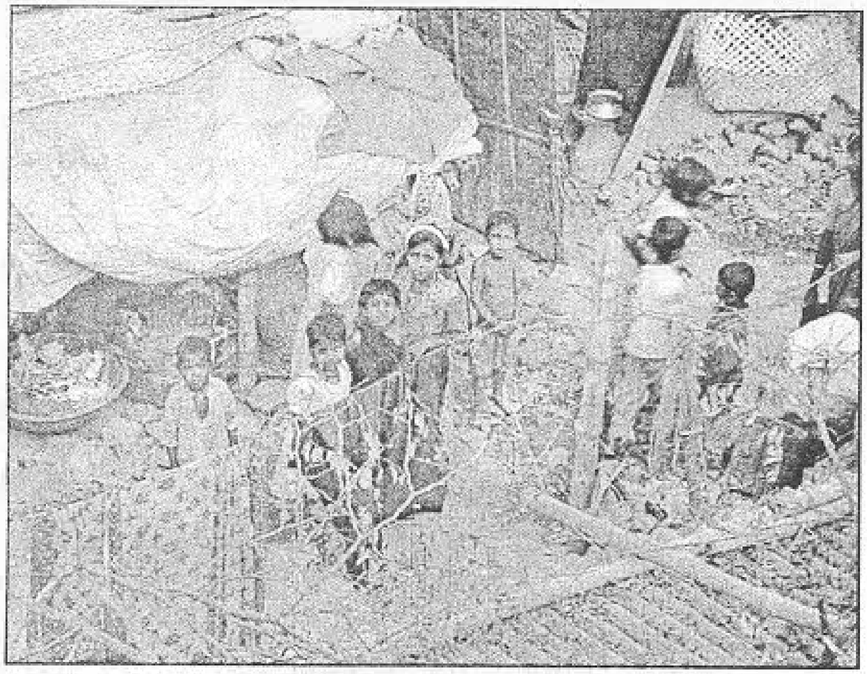

आज स्थिति यह आ गई है कि दाल रोटी के साथ दूध व फल खाना तो दूर रहा, लोगों को नमक के साथ ही रोटी खानी पड़ेगी, जबकि सरसों के तेल की कीमत 100 रुपए प्रति किलो होने जा रही है। ऐसी परिस्थिति में गरीब को 1 रुपए 55 पैसे प्रतिदिन खर्च करके कितना तेल प्राप्त हो पाएगा। इससे पता चलता है कि मौजूदा नीति–निर्माताओं को आम आदमीयों की तकलीफों से कोई मतलब नहीं है।

इस महंगाई के काल में जबकि आम आदमी का गुजर–बसर करना मुश्किल पड़ रहा है, योजना–आयोग का यह मसविदा जो कि सर्वोच्च न्यायालय में प्रस्तुत किया है, गरीबों के लिए जले पर नमक छिड़कने के समान है। योजना आयोग के हलफनामे में कहा गया है कि चार लोगों के परिवार में प्रतिदिन खर्च होने वाले खाद्य पदार्थ निम्न प्रकार है :–

खाद्य पदार्थ	रुपए
अनाज	5.50
दाल	1.02
दूध	2.33
खाद्य तेल	1.55
फल	0.44
चीनी	0.70
नमक व मसाले	0.78
कुकिंग गैस व ईंधन	3.75

इसके अलावा मकान का मासिक किराया रुपए 49.[illegible] बच्चों की शिक्षा पर किया जाने वाला व्यय रुपए 29.60 तथा जूते चप्पल पर किए जाने वाला व्यय रुपए 9.60 मासिक आंका गया है। जबकि आज के युग में सड़क पर लेटने वाले लोगों और साप्ताहिक बाजार लगने वाले रेहड़ी–खामोचा वालों को 50 रुपए पुलिस वालों को देने पड़ते है।

जबकि दाल के दाम बाजार में 70

आज जब 8–10 हजार रुपए प्रतिमाह वेतन पाने वाले लोग परेशान रहते हैं तो फिर 32 या 26 रुपए प्रतिदिन मजदूरी करने वाले लोगों का क्या हाल होगा, यह स्वयं विचार करने योग्य है। इस रिपोर्ट को लोग किसी सिरफिरे या शेखचिल्ली की ही रिपोर्ट कहेंगे। आज स्थिति यह आ गई है कि दाल रोटी के साथ दूध व फल खाना तो दूर रहा, लोगों को नमक के साथ ही रोटी खानी पड़ेगी. . .

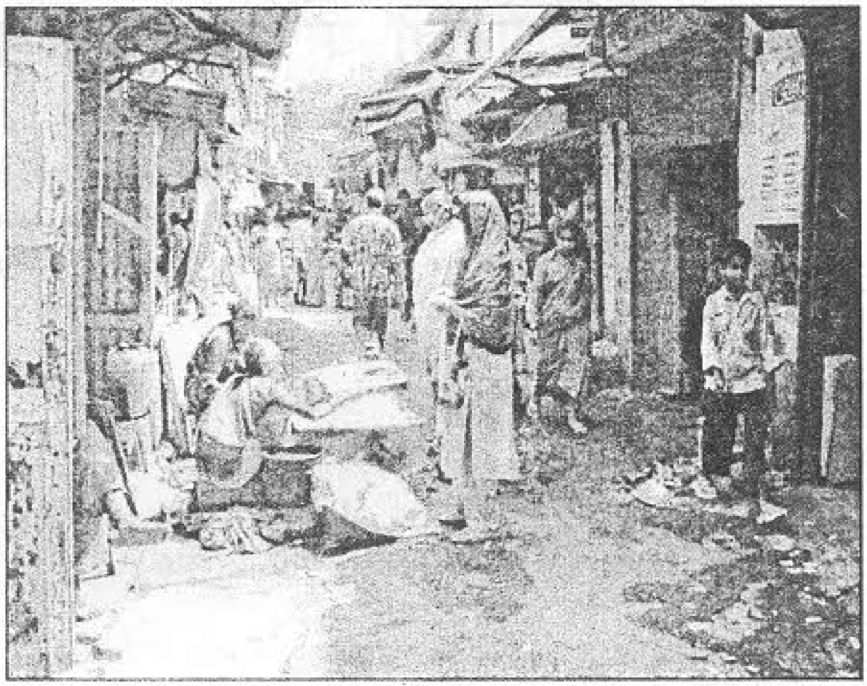

से 80 रुपए प्रति किलो है। उसके लिए केवल 1.02 रुपए बताया गया है। जिसमें केवल 10 ग्राम ही मिल पाएगी। 30 रुपए प्रति किलो दूध के लिए 2.33 रुपए पर्याप्त बताए गए हैं।

85 से 90 रुपए प्रति किलो वाले सरसों के तेल के लिए केवल 1.50 रुपए का खर्च बताया गया है। ऐसे में चार लोगों के परिवार वाले व्यक्ति न तो स्वयं ही भरण-पोषण कर सकता है न ही अपने ऊपर आश्रित लोगों का भरण–पोषण कर सकता है। ऐसा भद्दा मजाक गरीबों के साथ योजना–आयोग ने किया है।

योजना आयोग ने शहरों में 32 रुपए व गांव में 26 रुपए प्रतिदिन से ज्यादा मजदूरी करने वाले लोगों को गरीबों की श्रेणी में नहीं माना है और ऐसे लोगों के लिए कमेटी ने सब्सिडी पर दिए जाना वाला अनाज देने की मनाही की है।

इन परिस्थितियों में किसी से यह उम्मीद नहीं करनी चाहिए कि खाद्य सुरक्षा विधेयक जो कि संसद में चर्चा में है, पर कोई न्याय मिल पाएगा। अब आम आदमी का भला होने वाला नहीं है। आज जब 8–10 हजार रुपए प्रतिमाह वेतन पाने वाले लोग परेशान रहते हैं तो फिर 32 या 26 रुपए प्रतिदिन मजदूरी करने वाले लोगों का क्या हाल होगा, यह स्वयं विचार करने योग्य है। इस रिपोर्ट को लोग किसी सिरफिरे या शेखचिल्ली की ही रिपोर्ट कहेंगे। आज स्थिति यह आ गई है कि दाल रोटी के साथ दूध व फल खाना तो दूर रहा, लोगों को नमक के साथ ही रोटी खानी पड़ेगी, जबकि सरसों के तेल की कीमत 100 रुपए प्रति किलो होने जा रही है। ऐसी परिस्थिति में गरीब को 1.55 रुपए प्रतिदिन खर्च करके कितना तेल प्राप्त हो पाएगा।

इससे पता चलता है कि मौजूदा

बहुआयामी गरीबी के आधार पर तैयार की गई आक्सफोर्ड रिपोर्ट में भारत का आंकड़ा 55 प्रतिशत बताया गया है। वहीं भारत सरकार के मुताबिक गांव में गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोगों का प्रतिशत 30.42 के मध्य है और शहरों में आंकड़ा 27.37 प्रतिशत है। विश्व बैंक की रिपोर्ट भारत सरकार के आंकड़ों से मिलती है। इस प्रकार सुरेश तेन्दुलकर समिति की रिपोर्ट लोगों के अंदर निराशा व रोष पैदा करने वाली है। आजादी के समय हमारे देश की आबादी 32 करोड़ थी, उसमें 20 करोड़ लोग गरीब थे। किंतु आजादी के बाद तमाम आर्थिक विकास और गरीबी निवारण योजनाओं के बावजूद गरीबी की संख्या कम नहीं हुई है बल्कि आज 40 करोड़ तक पहुच गई है।

अर्जुन सेन समिति की रिपोर्ट के मुताबिक भारत में 77 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे रह रहे हैं। जबकि विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार ऐसे लोगों की संख्या 42 प्रतिशत है। बहुआयामी गरीबी के आधार पर तैयार की गई आक्सफोर्ड रिपोर्ट में भारत का आंकड़ा 55 प्रतिशत बताया गया है। वहीं भारत सरकार के मुताबिक गांव में गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोगों का प्रतिशत 30.42 के मध्य है और शहरों में आंकड़ा 27.37 प्रतिशत है।

नीति–निर्माताओं को आम आदमीयों की तकलीफों से कोई मतलब नहीं है। वह स्वयं के ऊपर प्रतिमाह लाखों रुपए खर्च करते हैं और गरीब को मृत्यु के कगार पर ढकेलने में कोई संकोच नहीं करते।

यह कल्पना नहीं की जा सकती कि योजना आयोग इतना अवमानवीय व असहिष्णु हो सकता है। यदि सरकार को आम आदमी की तनिक भी परवाह हो तो उसे न्यूनतम मजदूरी की दरों में एक झटके के साथ वृद्धि करनी चाहिए और प्रत्येक व्यक्ति को कम से कम 5 से 6 हजार प्रतिमाह आय के स्रोत सृजित करने चाहिए।

अभी तक गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाले लोगों की प्रतिदिन आय 60 रुपए आंकी जा रही है। सरकार को इस पर भी बदलाव करने की आवश्यकता है। अर्जुन सेन समिति की रिपोर्ट के मुताबिक भारत में 77 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे रह रहे हैं। जबकि विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार ऐसे लोगों की संख्या 42 प्रतिशत है। बहुआयामी गरीबी के आधार पर तैयार की गई आक्सफोर्ड रिपोर्ट में भारत का आंकड़ा 55 प्रतिशत बताया गया है। वहीं भारत सरकार के मुताबिक गांव में गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोगों का प्रतिशत 30.42 के मध्य है और शहरों में आंकड़ा 27.37 प्रतिशत है। विश्व बैंक की रिपोर्ट भारत सरकार के आंकड़ों से मिलती है। इस प्रकार सुरेश तेन्दुलकर समिति की रिपोर्ट लोगों के अंदर निराशा व रोष पैदा करने वाली है। आजादी के समय हमारे देश की आबादी 32 करोड़ थी, उसमें 20 करोड़ लोग गरीब थे। किंतु आजादी के बाद तमाम आर्थिक विकास और गरीबी निवारण योजनाओं के बावजूद गरीबी की संख्या कम नहीं हुई है बल्कि आज 40 करोड़ तक पहुंच गई है।

आज हम ऐसे भारत में रह रहे हैं जहां 40 करोड़ आबादी जानवरों जैसी जिन्दगी व्यतीत कर रही है। मैं मानता हूँ कि सुरेश तेन्दुलकर की रिपोर्ट एक साजिश का हिस्सा है, जिसके द्वारा सरकार गरीबों की संख्या कम दिखाना चाहती है, ताकि सामाजिक कल्याणकारी योजनाओं में कम खर्च हो।

आवश्यकता इस बात की है कि योजना आयोग को अधिक व्यवहारिक बनाया जाए और देश में ऐसा तंत्र बनाया जाए जिसमें पारदर्शिता व राजनैतिक ईमानदारी हो। योजना आयोग द्वारा सर्वोच्च न्यायल में प्रस्तुत दस्तावेज रद्दी की टोकरी में फेंक देना चाहिए।

यह संतोषजनक है कि योजना आयोग ने समय रहते इस हलफनामे से पल्ला झाड़ लिया। लेकिन सवाल यह है कि ऐसा हलफनामा पेश ही क्यों किया गया? क्या योजना आयोग को गरीबी के निर्धारण का यह आंकड़ा देते समय इसका आभास नहीं था कि यह गरीबों के साथ भद्दा मजाक है और इसके लिए उसे खरी–खोटी सुननी पड़ सकती है? माना कि आंकड़ों से खेलने वाला योजना आयोग आम आदमी की हकीकत से परिचित नहीं, लेकिन क्या ऐसी ही स्थिति सरकार की भी है? यदि नहीं तो उसने खुद को इस हलफनामे से नत्थी क्यों किया? ❑

दृष्टिकोण

आर्थिक चुनौतियों से कैसे निपटेगा भारत

जब विदेशी संस्थागत निवेशकों के लिए दुनिया के दूसरे शेयर बाजारों में संकट आता है तो वे भारत के शेयर बाजारों से अपना पैसा निकाल बाहर भेजते हैं। ऐसे में शेयर बाजार तो गिरता ही है, रुपये का मूल्य भी गिर जाता है। ऐसे में जब वे दुनिया के दूसरे बाजारों से पैसा निकालकर दोबारा भारत में ले आते हैं तो शेयर बाजार फिर से सुधर जाता है। विदेशी संस्थागत निवेशक जो कभी भी भारत से अपना पैसा निकालकर विदेशों को स्थानांतरित कर देते है, उन पर न्यूनतम तीन वर्ष का लॉक इन पीरियड का प्रावधान करना होगा और उनके मुनाफे पर ऊंची दर पर टैक्स भी लगाने होंगे।

■ डॉ. अश्विनी महाजन

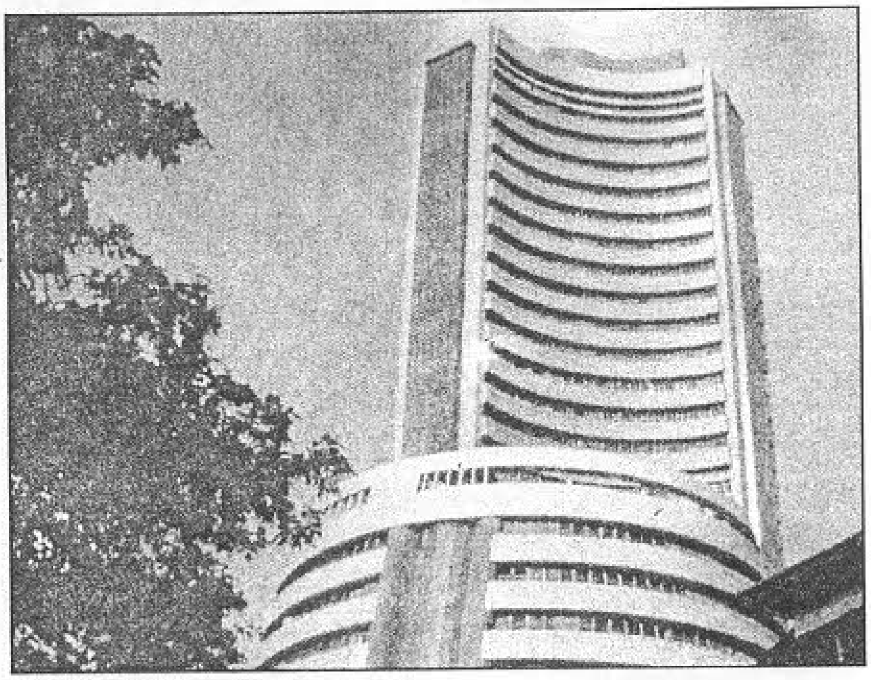

बंबई शेयर बाजार (बीएसई) का संवेदी सूचकांक (सेंसेक्स) 8 जुलाई 2011 के स्तर 19,084 से लुढ़कता और चढ़ता हुआ 23 सितंबर 2011 तक 16,162 स्तर तक पहुंच गया। उसी तरह से रुपया डॉलर के मुकाबले कमजोर होता हुआ 11 जुलाई 2011 को 44.37 रुपये प्रति डॉलर के स्तर से 23 सितंबर 2011 को 49.67 रुपये प्रति डॉलर तक पहुंच गया। निवेशकों को लाखों करोड़ रुपये का नुकसान अभी तक हो चुका है और इस वजह से देश के बाजारों में भारी आशंका का माहौल बना हुआ है।

पिछले कुछ सप्ताह से देश के शेयर बाजारों में अफरा–तफरी का माहौल बना हुआ है। बंबई शेयर बाजार (बीएसई) का संवेदी सूचकांक (सेंसेक्स) 8 जुलाई 2011 के स्तर 19,084 से लुढ़कता और चढ़ता हुआ 23 सितंबर 2011 तक 16,162 स्तर तक पहुंच गया। उसी तरह से रुपया डॉलर के मुकाबले कमजोर होता हुआ 11 जुलाई 2011 को 44.37 रुपये प्रति डॉलर के स्तर से 23 सितंबर 2011 को 49.67 रुपये प्रति डॉलर तक पहुंच गया। निवेशकों को लाखों करोड़ रुपये का नुकसान अभी तक हो चुका है और इस वजह से देश के बाजारों में भारी आशंका का माहौल बना हुआ है।

हालांकि मांग में कुछ घट–बढ़ के अपवाद को छोड़ दिया जाए तो देश की अर्थव्यवस्था में किसी भी कमजोरी का कोई संकेत नहीं है। इस वर्ष भी जीडीपी की वृद्धि दर 7.5 से 8.0 के बीच रहने का अनुमान है। विशेषज्ञों के बीच भी इस बात में कोई संशय नहीं है कि देश के शेयर बाजारों और रुपये में आई गिरावट अंतरराष्ट्रीय कारणों से है। बढ़ते कर्ज और देनदारियों को चुकाने की मुश्किल के चलते अमेरिकी अर्थव्यवस्था में आई गिरावट और ग्रीस सरकार द्वारा अपने ऋण की अदायगी में संभावित कोताही एवं यूरोप के अन्य देशों की बढ़ती मुश्किलें हमारे देश के शेयर बाजारों पर असर डाल रही हैं और साथ ही रुपया भी कमजोर हो रहा है।

अमेरिका–यूरोप का आर्थिक संकट पिछले लगभग चार सालों से अमेरिका और यूरोपीय देश आर्थिक संकट से गुजर रहे हैं। जब 1930 के दशक की भयंकर मंदी के बाद पहली बार पूंजीवादी विकसित देशों पर एक और मंदी की मार

पड़ी, तो ऐसा माना जा रहा था कि अमेरिका और यूरोप के देश अपनी आर्थिक ताकत के आधार पर स्वयं को मंदी से उबार पाने में सफल हो जाएंगे। इन देशों ने अपनी आर्थिक ताकत के आधार पर खरबों डॉलर के आर्थिक पैकेज देकर इस मंदी पर विजय पाने का प्रयास भी किया।

अमेरिका और यूरोप की सरकारों के आर्थिक पैकेजों के चलते शुरुआत में ये अर्थव्यवस्थाएं मंदी से कुछ उबरती दिखाई दीं और वहां बेरोजगारी में थोड़ी–बहुत कमी भी दिखाई दी। वित्तीय संस्थानों में भी कुछ सुधार दिखाई दिया, लेकिन पिछले कुछ माह से मंदी का दानव फिर से सिर उठाने लगा है। दुनिया के जाने–माने आर्थिक मामलों के जानकार अमेरिका में इस मंदी के गहराने की भविष्यवाणी कर रहे हैं।

उनका मानना है कि यह मंदी पिछली मंदी से भी अधिक भयंकर हो सकती है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री नोरियल रोबिनी और रोबर्ट शिलर ने भविष्यवाणी की है कि अमेरिका और यूरोप की अर्थव्यवस्था में भारी गिरावट आ सकती है। उधर, रोजर्स होल्डिंग्स के संस्थापक जिम रोजर्स का मानना है कि अमेरिका की आर्थिक रेटिंग में भारी कमी हो सकती है।

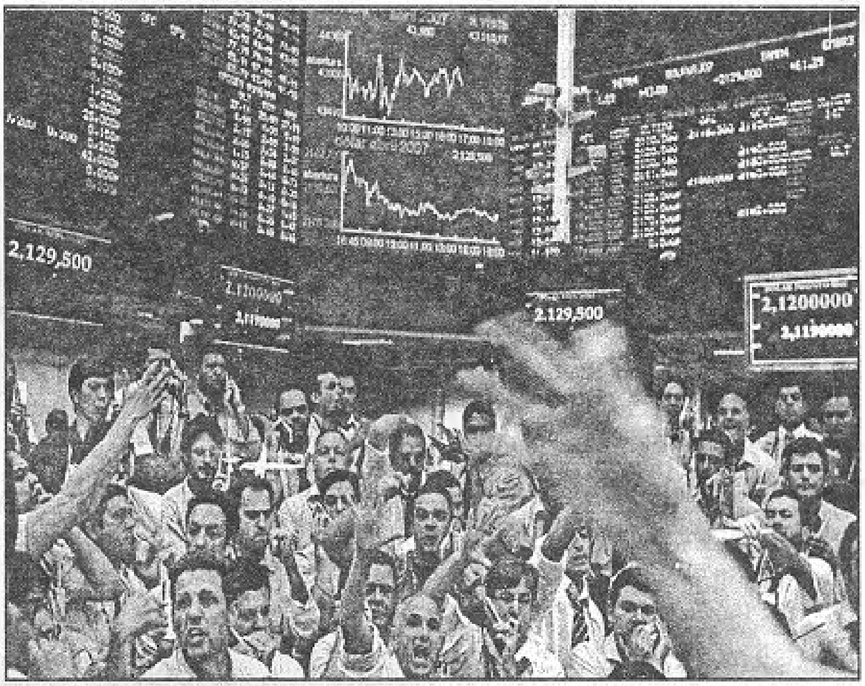

विशेषज्ञों की आशंकाएं अर्थशास्त्रियों का मानना है कि वर्ष 2011–12 या 2013 में संभावित यह मंदी पहले से कहीं ज्यादा भयंकर होगी, क्योंकि तीन वर्ष पहले आई मंदी से निपटने के लिए अमेरिका ने अपने तरकश के सभी तीर इस्तेमाल कर लिए हैं। करेंसी छापने और पैसा खर्च करने से लेकर तमाम मौद्रिक और राजकोषीय उपाय अपनाए जा चुके हैं। आने वाले समय में संभावित मंदी से निपटने के लिए अमेरिका के पास बहुत उपाय नहीं बचेंगे।

ताजा आंकड़ों के अनुसार, अंतरराष्ट्रीय रेटिंग एजेंसी स्टैंडर्ड एंड पुअर्स द्वारा अमेरिका की साख की रेटिंग की गई है। हालांकि यह स्वभाविक ही है, लेकिन इससे अमेरिकी नीति–निर्माताओं की मुश्किलें बढ़ने वाली हैं। ओबामा प्रशासन अमेरिकी अर्थव्यवस्था का एक सुनहरा चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास कर ही रहा था कि रेटिंग की इस गिरावट ने उनकी किरकिरी कर दी है। रेटिंग की इस कमी के चलते अमेरिका को उपाय करने होंगे और ब्याज दर भी बढ़ानी होगी। इससे पहले से ही मंदी की चपेट में अर्थव्यवस्था पर भारी असर पड़ सकता है।

22 सितंबर 2011 को अमेरिकी सरकार द्वारा अपने लघुकालीन ऋणों को दीर्घकालीन ऋणों में बदलने की कवायद में जब वैश्विक बाजारों में लिक्विडिटी प्रभावित होने की आशंका हुई तो दुनिया के शेयर बाजारों में रिकॉर्ड गिरावट आई, जिसके चलते भारत के शेयर बाजार भी औंधे मुंह जा गिरे।

दूसरी ओर ग्रीस सरकार द्वारा अपने कर्ज को चुकाने के लिए अपने एक हवाई

अमेरिका और यूरोप की सरकारों के आर्थिक पैकेजों के चलते शुरुआत में ये अर्थव्यवस्थाएं मंदी से कुछ उबरती दिखाई दीं और वहां बेरोजगारी में थोड़ी–बहुत कमी भी दिखाई दी। वित्तीय संस्थानों में भी कुछ सुधार दिखाई दिया, लेकिन पिछले कुछ माह से मंदी का दानव फिर से सिर उठाने लगा है। दुनिया के जाने–माने आर्थिक मामलों के जानकार अमेरिका में इस मंदी के गहराने की भविष्यवाणी कर रहे हैं।

अड्डे को ही बेचने और ऋणदाताओं द्वारा ग्रीस सरकार के खर्चे पर लगाम लगाने की शर्तों आदि की खबरों ने दुनिया के बाजारों को बैचेन किया है। ऐसी स्थिति में भारत सहित दुनिया के दूसरे देशों में घबराहट का बढना स्वाभाविक है, लेकिन हमें पूरी स्थिति पर गंभीरता से विचार करना होगा कि क्या दीर्घकाल में भारतीय अर्थव्यवस्था भी वैश्विक मंदी से प्रभावित होगी? डॉलर–रुपये का पेच वर्ष 2007–08 में भी ऐसी स्थिति बनी थी, शेयर बाजार औंधे मुंह गिरे थे।

रुपया भी गंभीर रूप से कमजोर हुआ था, लेकिन उस साल भी भारत की आर्थिक वृद्धि की दर 7 प्रतिशत रही थी और आने वाले सालों में यह 8 प्रतिशत को भी पार कर गई थी। रुपया पहले 51 रुपये तक गिरकर फिर मजबूत होता हुआ 44 रुपये प्रति डॉलर तक पहुंच गया था। ऐसा इसलिए हुआ कि वैश्विक मंदी के चलते हमारे निर्यात थोड़े बहुत घटे, लेकिन हमारे आयातों में भी कमी आई। विदेशी मांग की कमी की भरपाई देसी मांग ने कर दी। देश की अर्थव्यवस्था निरंतर आगे बढ़ती रही, जबकि विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाएं 2 प्रतिशत की दर से नीचे जा रही थी।

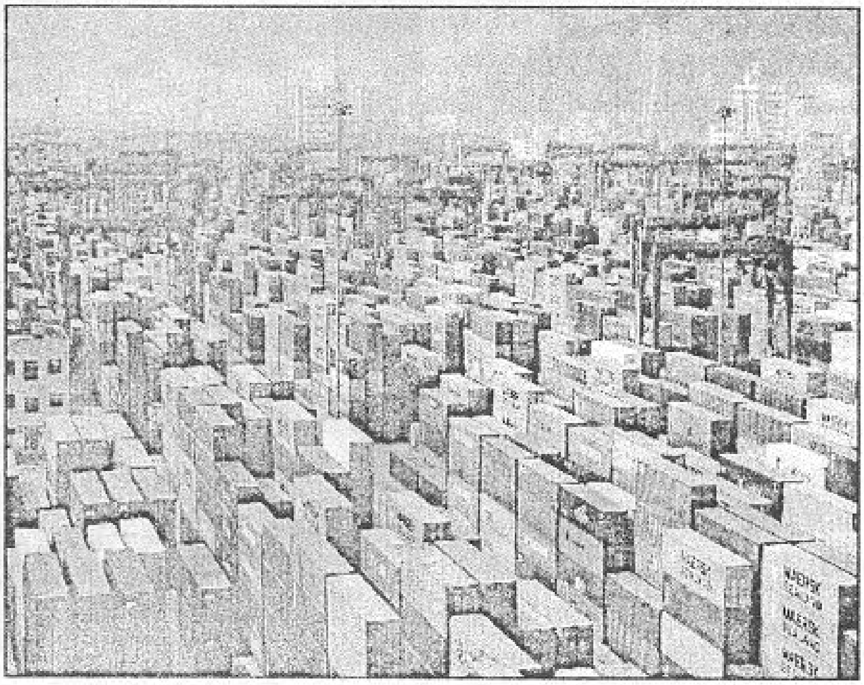

भारत के लिए चुनौती – हमें समझना होगा कि सेंसेक्स अर्थव्यवस्था का बैरोमीटर नहीं है। कभी सेंसेक्स 3 प्रतिशत नीचे जाता है तो अगले कुछ दिनों में फिर से 3–4 प्रतिशत ऊपर चला जाता है। ऐसे में यह नहीं समझना चाहिए कि अर्थव्यवस्था 3 प्रतिशत घट गई या 3–4 प्रतिशत बढ़ गई। सेंसेक्स का ऊपर–नीचे जाना विदेशी संस्थागत निवेशकों द्वारा मजबूरी में देश से विदेशी मुद्रा का बर्हिप्रवाह करना है।

जब विदेशी संस्थागत निवेशकों के लिए दुनिया के दूसरे शेयर बाजारों में संकट आता है तो वे भारत के शेयर बाजारों से अपना पैसा निकाल बाहर भेजते हैं। ऐसे में शेयर बाजार तो गिरता ही है, रुपये का मूल्य भी गिर जाता है। ऐसे में जब वे दुनिया के दूसरे बाजारों से पैसा निकालकर दोबारा भारत में ले आते हैं तो शेयर बाजार फिर से सुधर जाता है।

यह सही है कि रुपये का मूल्य गिरने के कारण देश में आयातित वस्तुएं महंगी होंगी और महंगाई बढ़ेगी, लेकिन यह बहुत दिन नहीं चलेगा। रोजमर्रा के शेयर बाजारों के उतार–चढ़ाव से आशंकित होने की बजाए नीति निर्माताओं को विदेशी व्यापार एवं निवेश पर अपनी नीतियों में सुधार करना होगा। आयातों पर अपनी निर्भरता कम और निर्यात संवर्धन के लिए ठोस प्रयास करने होंगे।

यह सही है कि रुपये का मूल्य गिरने के कारण देश में आयातित वस्तुएं महंगी होंगी और महंगाई बढ़ेगी, लेकिन यह बहुत दिन नहीं चलेगा। रोजमर्रा के शेयर बाजारों के उतार–चढ़ाव से आशंकित होने की बजाए नीति निर्माताओं को विदेशी व्यापार एवं निवेश पर अपनी नीतियों में सुधार करना होगा। आयातों पर अपनी निर्भरता कम और निर्यात संवर्धन के लिए ठोस प्रयास करने होंगे।

विदेशी संस्थागत निवेशक जो कभी भी भारत से अपना पैसा निकालकर विदेशों को स्थानांतरित कर देते हैं, उन पर न्यूनतम तीन वर्ष का लॉक इन पीरियड का प्रावधान करना होगा और उनके मुनाफे पर ऊंची दर पर टैक्स भी लगाने होंगे। ❑

यूरोप के संकट का आधार

भारत द्वारा ग्रीस की सरकार की ओर से जारी बांड को खरीदना इसलिए भी उचित नहीं है कि इसमें भारी घाटा होने की पूरी संभावनाएं हैं। ग्रीस सरकार के दीवालिया होने पर ये रद्दी कागज के टुकड़े मात्र रह जाएंगे। अतरू ग्रीस, यूरोप एवं अमेरिका को मदद करने के स्थान पर भारत को ब्राजील, चीन तथा रूस के साथ मिलकर इन देशों के कद को छोटा करने का प्रयास करना चाहिए। वित्त मंत्री ने साथ–साथ निराशा जताई है कि अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसी संस्थाओं द्वारा विकासशील देशों को दी जाने वाली मदद कम है तथा इन सेवाओं में विकासशील देशों की भागीदारी भी कम है।

डा. भरत झुनझुनवाला

वित्तमंत्री प्रणब मुखर्जी समेत ब्राजील, चीन तथा रूस के वित्तमंत्रियों ने कहा है कि हम यूरोप के संकट को टालने में मदद करने को तैयार हैं। ग्रीस की अर्थव्यवस्था पिछले लगभग एक वर्ष से संकट में है। पुर्तगाल, स्पेन, आयरलैंड एवं इटली भी कमोबेश संकट की ओर बढ़ रहे हैं।

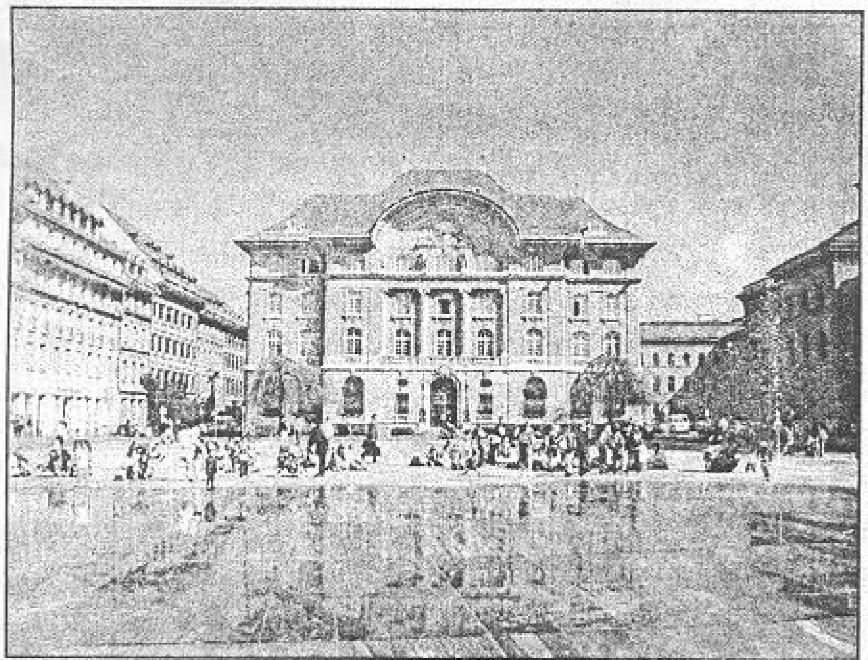

ग्रीस के संकट का मूल कारण है सरकार की आय कम और व्यय ज्यादा होना। इस घाटे की पूर्ति के लिए दूसरे यूरोपीय देशों ने ऋण दिए थे। उन्होंने साथ में शर्त लगाई थी कि ग्रीस की सरकार अपने घाटे को कम करेगी। सरकारी कर्मियों के वेतन और जनता को मुहैया कराई जाने वाली सुविधाओं में कटौती की जाएगी, परंतु इन कटौतियों के विरोध में ग्रीस की जनता सड़कों पर उतर आई है।

ग्रीस की सरकार ने भारी मात्रा में ऋण लिए हैं। सरकार के पास इन ऋणों का भुगतान करने को रकम नहीं है। जर्मनी समेत यूरोप के प्रमुख देशों ने ग्रीस को सौ अरब डालर का ऋण उपलब्ध कराया है, परंतु संकट थम नहीं रहा है। अतः भारत आदि देशों से सहायता की गुहार की जा रही है।

ग्रीस के संकट का मूल कारण है सरकार की आय कम और व्यय ज्यादा होना। इस घाटे की पूर्ति के लिए दूसरे यूरोपीय देशों ने ऋण दिए थे। उन्होंने साथ में शर्त लगाई थी कि ग्रीस की सरकार अपने घाटे को कम करेगी। सरकारी कर्मियों के वेतन और जनता को मुहैया कराई जाने वाली सुविधाओं में कटौती की जाएगी, परंतु इन कटौतियों के विरोध में ग्रीस की जनता सड़कों पर उतर आई है। सरकारी कर्मचारी, टैक्सी ड्राइवर इत्यादि बार–बार हड़ताल पर जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में सरकार का घाटा नियंत्रित होता नहीं दिखता है।

ग्रीस की सरकार की इस असफलता की जड़ें यूरोपीय संघ के मूल ढांचे में है। यूरोपीय संघ ने साझा मुद्रा यूरो को अपनाया है। इस कारण ग्रीस की सरकार के पास मुद्रा को छापकर घाटे को नियंत्रित करने का विकल्प नहीं रह गया है। सरकार के पास केवल टैक्स लगाने तथा खर्च में कटौती के वित्तीय उपाय ही बचे हैं। इन्हें लागू करना कठिन होता है।

सरकारी घाटे को मौद्रिक अथवा वित्तीय पॉलिसी–दोनों से ही नियंत्रित किया जा सकता है। मान लीजिए

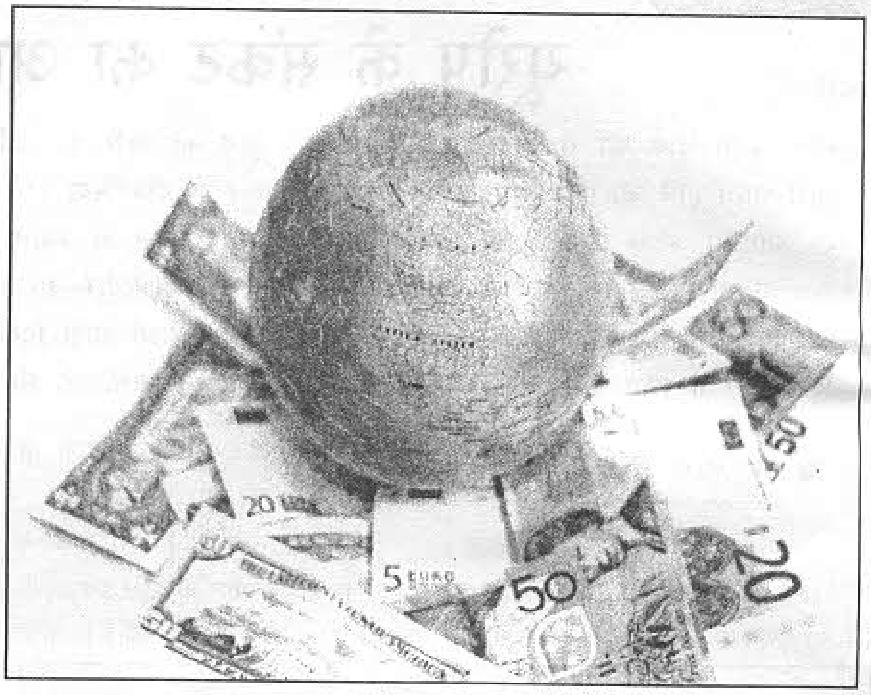

सरकार की आय 100 रुपये तथा खर्च 110 रुपये है। दस रुपये के इस घाटे को पार लगाने का मौद्रिक विकल्प है कि सरकार 10 रुपये के नोट छाप ले। दस रुपये के इन नोटों से बाजार में उपलब्ध माल को खरीद ले।

अब जनता के हाथ में 100 रुपये की क्रय शक्ति पूर्ववत रहेगी, परंतु बाजार में केवल 90 रुपये का ही माल बचेगा। इससे सब तरफ महंगाई में 10 प्रतिशत की वृद्धि हो जाएगी। महंगाई का यह प्रभाव देश के सभी नागरिकों पर पड़ेगा। किसी विशेष करदाता पर टैक्स नहीं बढ़ाना होगा और न ही किसी विशेष कर्मी के वेतन घटाने होंगे। जैसे सूर्य तालाब से धीरे–धीरे पानी उठा लेता है वैसे ही नोट छापने से जनता की क्रयशक्ति चुपके से कम हो जाती है।

भारत में 1991 में मुद्रा का अवमूल्यन इसी प्रकार हुआ था और सरकारी घाटा बिना किसी उपद्रव के नियंत्रण में आ गया था। वित्तीय पॉलिसी का क्रियान्वयन तुलना में स्पष्ट एवं सीधा होता है। आय को बढ़ाने के लिए किन्हीं विशेष लोगों पर टैक्स लगाना होता है। इससे जनता में असंतोष फैलता है जैसे हाल ही में भारत में पेट्रोल अथवा रसोई गैस के दाम में वृद्धि होने पर जनता सड़क पर उतर आई थी। खर्च घटाने के लिए सरकारी कर्मियों की छंटनी तथा उनके वेतन में कटौती करनी होगी। इसका विरोध सरकारी कर्मी हड़ताल के माध्यम से करते हैं। इसलिए वित्तीय नीति के माध्यम से घाटे को नियंत्रित करना कठिन होता है।

यूं समझें कि सूरज की गर्मी बढ़ रही हो तो सभी परेशान होने के बावजूद चुपचाप सहन करते हैं, परंतु पंखा बंद करने से लगने वाली गर्मी का विरोध तत्काल होता है। इसी तरह महंगाई एवं मुद्रा के अवमूल्यन को लोग स्वीकार कर लेते हैं, परंतु टैक्स आरोपित करने अथवा वेतन में कटौती का पुरजोर विरोध करते हैं।

भारत में 1991 में मुद्रा का अवमूल्यन इसी प्रकार हुआ था और सरकारी घाटा बिना किसी उपद्रव के नियंत्रण में आ गया था। वित्तीय पॉलिसी का क्रियान्वयन तुलना में स्पष्ट एवं सीधा होता है। आय को बढ़ाने के लिए किन्हीं विशेष लोगों पर टैक्स लगाना होता है। इससे जनता में असंतोष फैलता है जैसे हाल ही में भारत में पेट्रोल अथवा रसोई गैस के दाम में वृद्धि हाने पर जनता सड़क पर उतर आई थी।

ग्रीस समेत यूरोप के सभी देशों की मौलिक समस्या यह है कि उनके हाथ से घाटा नियंत्रित करने का मौद्रिक पॉलिसी का आसान अस्त्र छीन लिया गया है। उनके हाथ में एकमात्र अस्त्र वित्तीय पॉलिसी का है, जिसे लागू करना कठिन होता है। इस समस्या का समाधान यूरोपीय संघ का विघटन है। तब ग्रीस की अपनी मुद्रा होगी जिसका अवमूल्यन करके ग्रीस समस्या से उबर सकता है।

यूरोपीय देश खुला बाजार बनाए रख सकते हैं, जैसा कि फ्री ट्रेड समझौते के अंतर्गत किया जाता है। वे समान मानक बना सकते हैं। वे अपने नागरिकों को दूसरे देश में पलायन का अधिकार दे सकते हैं, परंतु मौद्रिक पॉलिसी पर अपना अधिकार छोड़ देने से सरकार की स्वतंत्रता बहुत कम हो जाती है। इस पृष्ठभूमि में हमारे वित्त मंत्री द्वारा ग्रीस को मदद करने की पहल पर पुनर्विचार करना चाहिए। पश्चिमी देशों का दबाव है कि भारत आदि

देश ग्रीस की मदद करें, जिससे भारत के पारंपरिक बाजार जीवित रहें और निर्यात प्रभावित न हों।

यह उसी तरह हुआ कि राजा साहब ग्रामीण लोगों को कहें कि वे जमींदार की मदद करें, जिससे उनके द्वारा उत्पादित दूध सब्जी की खरीद होती रहे। इस बात को राजा साहब छिपा जाते हैं कि जमींदार की मदद करने से ग्रामीण सदा गरीब बने रहेंगे।

आज जरूरत पश्चिमी देशों की ऊंची खपत को घटाने की है। विकसित देशों में रहने वाले 25 प्रतिशत लोग वर्तमान में 75 प्रतिशत संसाधनों की खपत कर रहे हैं। इस विसंगति को दूर करने के लिए जरूरी है कि विकसित देशों की खपत में कटौती हो। यह कटौती यूरोप आदि के संकटग्रस्त होने से हो जाएगी। मेरी भावना विकसित देशों के प्रति क्रोध की नहीं है। मैं तो बस यही चाहता हूं कि विकसित देश स्वयं इस समस्या को पहचानें और दूर करें, परंतु उनके द्वारा इस ओर कोई कदम नहीं उठाए जा रहे हैं। अतः विकासशील देशों को सर्जरी करनी होगी।

भारत द्वारा ग्रीस की सरकार की ओर से जारी बांड को खरीदना इसलिए भी उचित नहीं है कि इसमें भारी घाटा होने की पूरी संभावनाएं हैं। ग्रीस सरकार के दीवालिया होने पर ये रद्दी कागज के टुकड़े मात्र रह जाएंगे। अतरू ग्रीस, यूरोप एवं अमेरिका को मदद करने के स्थान पर भारत को ब्राजील, चीन तथा रूस के साथ मिलकर इन देशों के कद को छोटा करने का प्रयास करना चाहिए। वित्त मंत्री ने साथ–साथ निराशा जताई है कि अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसी संस्थाओं द्वारा विकासशील देशों को दी जाने वाली मदद कम है तथा इन सेवाओं में विकासशील देशों की भागीदारी भी कम है।

वित्तमंत्री को समझना चाहिए कि मुद्रा कोष जैसी संस्थाओं में सुधार भिक्षा मांगने से नहीं होगा। पश्चिमी देशों के संकटग्रस्त होने से इन संस्थाओं का दबाव स्वतः समाप्त हो जाएगा। तब ही नए वैश्विक ढांचे का निर्माण संभव होगा। ❑

सदस्यता संबंधी सूचना

मान्यवर,,

स्वदेशी पत्रिका आज देश में चल रहे स्वदेशी आंदोलनों का स्थापित प्रतीक बन चुकी है। पिछले कई वर्षो से स्वदेशी पत्रिका ने असंगत एवं एकतरफा वैश्वीकरण, जनविरोधी आर्थिक उदारीकरण के विरोध एवं वैकल्पिक और रचनात्मक स्वदेशी आंदोलन के पक्ष में एक सक्रिय प्रहरी के नाते हमेशा आपको जागरूक बनाया है एवं आपसे संवाद स्थापित किया है। विगत कालखंड में इन सभी मुद्दों पर हमें आप जैसे सजग पाठकों का अपेक्षित सहयोग भी मिलता रहा है और भविष्य में भी मिलेगा ऐसा, विश्वास है।

आपसे आग्रह है कि स्वदेशी पत्रिका की आपकी सदस्यता अवधि यदि समाप्त हो गई हो तो कृपया पिछले समय से आगामी वर्ष तक की राशि धनादेश (मनीआर्डर), चेक एवं मांग पत्र (डिमांड ड्राफ्ट) के माध्यम से शीघ्र भेजने की कृपा करें। पत्रिका के लिफाफे के उपर चिपकाए गए पते की प्रथम पंक्ति में सदस्यता अवधि अंकित है। आप अपनी सदस्यता राशि "स्वदेशी पत्रिका" के नाम पत्रिका के कार्यालय के पते पर भेज सकते हैं। सदस्यता अद्यतन न हो पाने की स्थिति में वित्तीय कारणों से पत्रिका आगे जारी रखना कठिन होगा।

सदस्यता शुल्क निम्न प्रकार है।

स्वदेशी पत्रिका	वार्षिक	आजीवन
हिन्दी	100/–	1000/–
अंग्रेजी	100/–	1000/–

हमें आपका सहयोग स्वदेशी आंदोलन को राष्ट्रव्यापी एवं जनोन्मुखी बनाने में प्रमुख भूमिका निभाएगा। कृपया स्वदेशी पत्रिका स्वयं भी पढ़ें एवं अन्य को भी पढ़ने के लिए प्रेरित करें। पत्रिका के संबंध में अपना निष्पक्ष विचार हमें अवश्य भेजें।

पता : **स्वदेशी पत्रिका कार्यालय, 'धर्मक्षेत्र' शिव शक्ति मंदिर, सैक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली–22**

मुद्दा

निर्यात की डगर पर बढ़ती मुश्किलें

वैश्विक मंदी के बढ़ते हुए निराशाजनक दौर में यद्यपि डॉलर के मुकाबले रुपया कमजोर होने से निर्यातकों को कुछ राहत है, लेकिन उनकी दूसरी कठिनाइयां यथावत हैं। ऐसे में भारत को मंदी की चुनौतियों के बीच नए निर्यात बाजार खोजने होंगे। ब्रिक्स और आसियान देशों में निर्यात बढाने के नए प्रयास करने होंगे। चीन में भी भारतीय निर्यात की नई संभावनाएं खोजनी होंगी. . .

■ जयंतीलाल भंडारी

इस समय जैसे–जैसे पूरी दुनिया एक बार फिर से वैश्विक मंदी की ओर तेजी से आगे बढ़ रही है, वैसे–वैसे वैश्विक व्यापार कम हो रहा है और दुनिया में निर्यात संकट की स्थिति उत्पन्न हो रही है। ऐसे में भारत के निर्यात भी घटते हुए दिखाई दे रहे हैं।

वस्तुतः वैश्विक व्यापार और निर्यात घटने के पीछे अमेरिका और यूरोपीय देशों का कर्ज संकट सबसे प्रमुख कारण है। अमेरिकी अर्थव्यवस्था में दोहरी मंदी, (डबल डिप रिसेशन) का संकट खड़ा हो गया है। नवीनतम सर्वेक्षण बता रहे हैं कि अमेरिका में लोग वर्तमान परिदृश्य से निराश और चिंतित हैं। मिशिगन विश्वविद्यालय के उपभोक्ता मनोभाव सूचकांक की गिरावट अगस्त 2011 के अंत में 30 वर्षों के न्यूनतम स्तर पर आ गई है। यह स्तर नवम्बर 2008 की पिछली मंदी के स्तर से भी कम है।

स्थिति यह है कि अमेरिका की दोहरी मंदी को दूसरे विश्व युद्ध के समय शुरू हुई मंदी से भी घातक माना जा रहा है। यह उल्लेखनीय है कि अमेरिका और

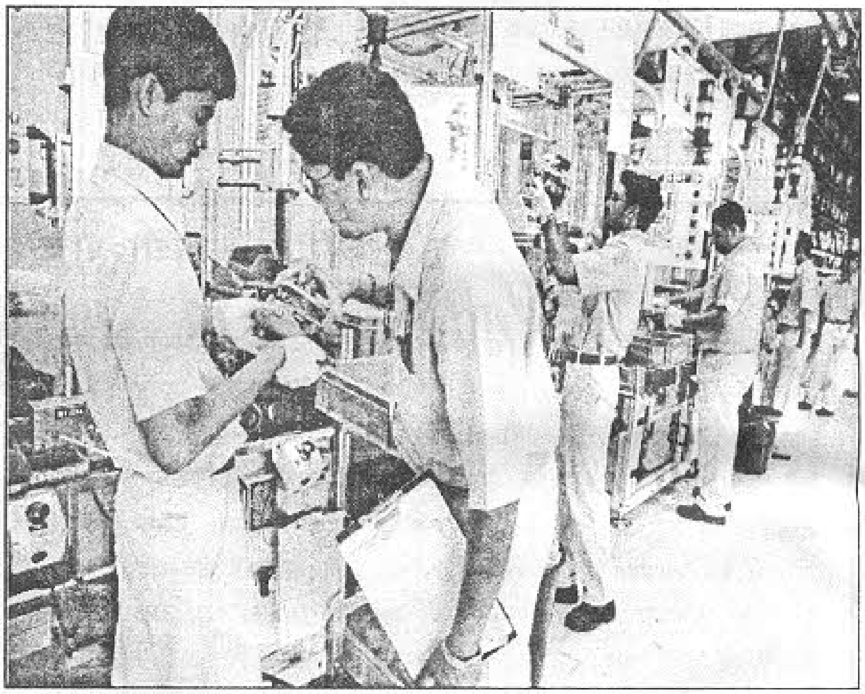

यूरो जोन के कर्ज संकट और विकसित अर्थव्यवस्थाओं में राजकोषीय अस्थिरता से विकासशील देशों में भी पूंजी के प्रवाह और निर्यातों पर स्पष्ट असर पड़ा है।

वर्ष 2008 में जहां दुनिया मंदी के संकट से निपटने के लिए बेहतर स्थिति में थी और उसने इसकी प्रतिक्रिया में कठिनाई से निपटने के लिए बेहतर तालमेल और समन्वय भी दिखाया था वहीं अब वर्ष 2011 में ऐसा होता नहीं दिख रहा है। फिलहाल अमेरिका और कई यूरोपीय देशों की सरकारें सरकारी निष्क्रियता, भारी महंगाई और राजकोषीय दबाव का सामना कर रही हैं।

स्थिति यह है कि अटलांटिक पार की अर्थव्यवस्थाओं में मंदी और ऋण संकट की दोहरी चुनौती और विकसित देशों की सरकारों द्वारा कदम न उठाए

अमेरिका और यूरोप में खर्चे में कटौती की जो प्रक्रिया चल रही है, उससे भारतीय निर्यातकों को मुसीबतों का सामना करना पड़ रहा है। उदाहरण के लिए अमेरिकी और यूरोपीय बाजारों में वित्तीय अस्थिरता और कच्चे माल व लागत में भारी बढ़ोतरी के कारण भारतीय चमड़ा निर्यात की वृद्धि दर कमजोर पड़ रही है। लघु और मझोले उद्योगों की बहुलता वाले चमड़ा उत्पादन क्षेत्र में लागत बढ़ने से इकाइयों का मार्जिन 50 फीसद घट गया है।

जाने के चलते वैश्विक अर्थव्यवस्था के समक्ष विदेश व्यापार और निर्यातों में कमी का खतरा उत्पन्न हो गया है।

हालांकि भारत अपनी कृषि अर्थव्यवस्था, लोगों की बचत और मजबूत बैंकिंग व्यवस्था के कारण दोहरी मंदी और निर्यात संकट से कम प्रभावित हो रहा है। लेकिन अमेरिका भारत का सबसे बड़ा उद्योग व्यापार सहभागी है, इसलिए भारत पर कमोबेश प्रभाव होना स्वाभाविक है। देश में गहराते आर्थिक संकट के बीच गैर आईटी क्षेत्रों में नौकरियां घटी हैं। टेलीकॉम, वित्तीय सेवाओं, निर्माण और ऑटो क्षेत्र से जुड़ी कंपनियों में होने वाली भर्तियों में कमी दर्ज की गई है।

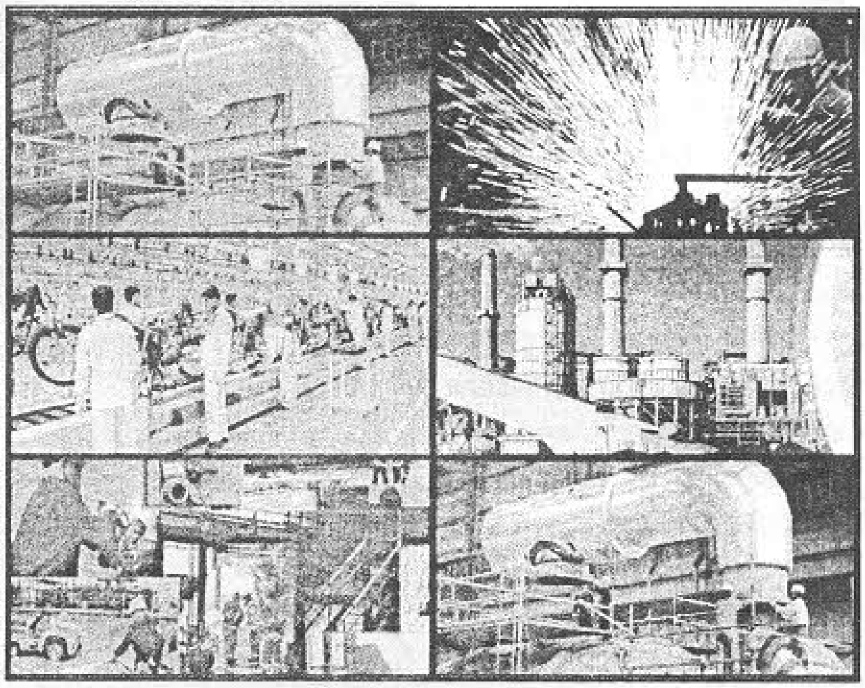

गौरतलब है कि भारत के आईटी व्यापार का 60 प्रतिशत निर्यात अमेरिका से संबंधित है जबकि कुल निर्यात का लगभग 35 प्रतिशत अमेरिका और यूरोप के बाजार में पहुंचता है। मंदी के कारण इन देशों में भारतीय निर्यात के जो क्षेत्र सबसे ज्यादा प्रभावित हो रहे हैं, उनमें जेम एंड ज्वैलरी, लेदर, टैक्सटाइल, आईटी, फार्मा और कुछ अन्य सेवा क्षेत्र शामिल हैं।

दरअसल, अमेरिका और यूरोप में खर्च में कटौती की जो प्रक्रिया चल रही है, उससे भारतीय निर्यातकों को मुसीबतों का सामना करना पड़ रहा है। उदाहरण के लिए अमेरिकी और यूरोपीय बाजारों में वित्तीय अस्थिरता और कच्चे माल व लागत में भारी बढ़ोतरी के कारण भारतीय चमड़ा निर्यात की वृद्धि दर कमजोर पड़ रही है। लघु और मझोले उद्योगों की बहुलता वाले चमड़ा उत्पादन क्षेत्र में लागत बढ़ने से इकाइयों का मार्जिन 50 फीसद घट गया है।

ऐसे में बेहद जरूरी है कि चमड़ा निर्यात बढ़ाने के लिए तथा इससे संबंधित उत्पादों को अधिक प्रतिस्पर्धी बनाने के लिए सरकार कच्चे माल के आयात पर शुल्क और उससे जुड़े करों को घटाने, प्राकृतिक रबड़ के आयात पर शुल्क कम करने की दिशा में पहल करे।

हालांकि भारत अपनी कृषि अर्थव्यवस्था, लोगों की बचत और मजबूत बैंकिंग व्यवस्था के कारण दोहरी मंदी और निर्यात संकट से कम प्रभावित हो रहा है। लेकिन अमेरिका भारत का सबसे बड़ा उद्योग व्यापार सहभागी है, इसलिए भारत पर कमोबेश प्रभाव होना स्वाभाविक है। देश में गहराते आर्थिक संकट के बीच गैर आईटी क्षेत्रों में नौकरियां घटी हैं। टेलीकॉम, वित्तीय सेवाओं, निर्माण और ऑटो क्षेत्र से जुड़ी कंपनियों में होने वाली भर्तियों में कमी दर्ज की गई है।

वैश्विक मंदी के बढ़ते हुए निराशाजनक दौर में यद्यपि डॉलर के मुकाबले रुपया कमजोर होने से निर्यातकों को कुछ राहत है, लेकिन उनकी दूसरी निर्यात कठिनाइयां यथावत हैं। ऐसे में भारत को मंदी की चुनौतियों के बीच नए निर्यात बाजार खोजने होंगे। ब्रिक्स और आसियान देशों में निर्यात बढ़ाने के नए प्रयास करने होंगे। चीन में भी भारतीय निर्यात की नई संभावनाएं खोजनी होंगी। माना जा रहा है कि भारत–आसियान मुक्त व्यापार समझौता (एफटीए) लागू होने के बाद भारतीय उद्योगों के लिए असीम अवसर पैदा हुए हैं, लेकिन आसियान देशों से होने वाले आयात पर शुल्क में कमी से भारतीय उद्योगों को कुछ नुकसान भी उठाना पड़ा है।

आसियान समझौता जनवरी 2010 में लागू हुआ था। भारत–आसियान एफटीए का भारतीय उद्योगों पर प्रभाव

के मामले में फिक्की द्वारा कराए गए नवीनतम अध्ययन में इस बात का खुलासा हुआ है कि भारत आसियान देशों में निर्यात और बढ़ा सकता है। इसी तरह खाड़ी देशों में चीन के साथ भारत की भी समान निर्यात संभावनाएं उभरकर सामने आ रही हैं।

निश्चित रूप से वर्ष 2020 तक चीन खाड़ी देशों का सबसे बड़ा आर्थिक साझेदार होगा लेकिन इस दौरान इन देशों के साथ भारत के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संबंध भी सही दिशा में प्रगति करेंगे और भारत से निर्यात संभावनाएं भी बढ़ेंगी। लेकिन भारत की निर्यात वृद्धि जिन कुछ खास खतरों से जूझ रही है इन खतरों से सही तरीके से निपटा गया तो ही खाड़ी देशों के साथ व्यापार और निवेश बढ़ेंगे।

हमारे लिए बुनियादी ढांचे के विकास और अनुकूल कारोबारी माहौल पर ध्यान देना जरूरी है। चूंकि हमारा विदेश व्यापार असंतुलन तेजी से बढ़ता जा रहा है, इसलिए एक ओर मंदी की चुनौतियों के बावजूद निर्यात बढ़ाने होंगे, वहीं दूसरी ओर आयात को नियंत्रित करने की रणनीति भी बनानी होगी। हमें देश के निर्यात को दूसरे देशों में दी जा रही सुविधाओं के दृष्टिगत प्रोत्साहित करना होगा। भारतीय निर्यात को विश्व बाजार में चीन से मिल रही निर्यात चुनौतियों का भी सामना करना है।

फिलहाल जहां विश्व निर्यात में भारत का हिस्सा महज एक फीसद है, वहीं चीन का हिस्सा दस फीसद है। इस समय निर्यात में जबरदस्त इजाफे के बाद 1.20 लाख करोड़ डॉलर का निर्यात रिकार्ड बनाते हुए चीन जर्मनी से आगे निकलकर दुनिया का सबसे बड़ा निर्यातक बन गया है। जिन देशों के साथ भारत के एफटीए हुए है, उनमें से अधिकांश देशों के साथ चीन के भी एफटीए हैं।

लिहाजा, चीन के साथ भारत की प्रतिस्पर्धा बहुत बढ़ गई है। स्थिति यह बनी है कि भारत को एफटीए वाले देशों के बाजारों में ताकतवर खिलाड़ी चीन से आमने–सामने का मुकाबला करना पड़ रहा है। ऐसे में भारतीय निर्यात को वैश्विक प्रतिस्पर्धा में बनाए रखने के लिए निर्यात लागत घटानी होगी। निर्यातकों को वर्तमान से दो फीसदी कम ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराए जाने चाहिए।

वस्तुतः हमारे देश में निर्यात ऋण पर ब्याज दर चीन सहित दुनिया के अन्य देशों की तुलना में ज्यादा है। देश के औद्योगिक क्षेत्र को सुस्ती के दौर से निकालने के लिए प्रोत्साहन देने होंगे। औद्योगिक एवं व्यापारिक ऋणों पर लगातार ब्याज दर बढ़ाए जाने संबंधी मौद्रिक कदमों को रोकना होगा। इन सबके साथ–साथ देश की नई पीढ़ी को प्रतिभा और कौशल उन्नयन से सुसज्जित करके निर्यात की डगर पर आगे बढ़ना होगा। ❑

हमारे लिए बुनियादी ढांचे के विकास और अनुकूल कारोबारी माहौल पर ध्यान देना जरूरी है। चूंकि हमारा विदेश व्यापार असंतुलन तेजी से बढ़ता जा रहा है, इसलिए एक ओर मंदी की चुनौतियों के बावजूद निर्यात बढ़ाने होंगे, वहीं दूसरी ओर आयात को नियंत्रित करने की रणनीति भी बनानी होगी। हमें देश के निर्यात को दूसरे देशों में दी जा रही सुविधाओं के दृष्टिगत प्रोत्साहित करना होगा। भारतीय निर्यात को विश्व बाजार में चीन से मिल रही निर्यात चुनौतियों का भी सामना करना है।

पर्यावरण

नदियों के प्रवाह की रक्षा जरूरी

नदियों के प्राकृतिक प्रवाह के संरक्षण को अभी तक सरकार के नियोजन में समुचित महत्व नहीं मिला है। जो थोड़ा–बहुत कार्य हुआ है वह मुख्य रूप से सीवेज के ट्रीटमेंट से संबंधित है। हालांकि यह कार्य भी अपनी जगह जरूरी है और इसमें काफी सुधार की भी जरूरत है, पर जब तक नदियों के जरूरी प्राकृतिक प्रवाह को बनाए रखने पर समुचित ध्यान नहीं दिया जाएगा तब तक केवल सीवेज के उपचार से नदियों की रक्षा नहीं हो सकेगी।

■ भारत डोगरा

हमारे देश की नदियां संकट में हैं। ऐसा क्यों है कि कई बहुप्रचारित परियोजनाएं बनने के बाद भी अभी हम नदियों व उनके पर्यावरण की रक्षा नहीं कर पाए हैं। इसकी एक मुख्य वजह यह है कि नदियों के प्राकृतिक प्रवाह के संरक्षण को अभी तक सरकार के नियोजन में समुचित महत्व नहीं मिला है। जो थोड़ा–बहुत कार्य हुआ है वह मुख्य रूप से सीवेज के ट्रीटमेंट से संबंधित है।

हालांकि यह कार्य भी अपनी जगह जरूरी है और इसमें काफी सुधार की भी जरूरत है, पर जब तक नदियों के जरूरी प्राकृतिक प्रवाह को बनाए रखने पर समुचित ध्यान नहीं दिया जाएगा तब तक केवल सीवेज के उपचार से नदियों की रक्षा नहीं हो सकेगी।

इस स्थिति को यमुना नदी के उदाहरण से समझा जा सकता है। पर्वतीय जलग्रहण क्षेत्र से मैदानी इलाके में प्रवेश करने के बाद इस नदी का अधिकांश जल सिंचाई या अन्य जरूरतों को पूरा करने के लिए नहरों के माध्यम से अलग मोड़ दिया जाता है। इस तरह नदी के प्राकृतिक मार्ग के लिए बहुत कम जलधारा बचती है, जिस पर उसमें भी गंदगी छोड़ी जाती है। बेहद कम जल–धारा रह जाने से नदी अपनी प्राकृतिक प्रक्रियाओं को पूरा नहीं कर पाती है तथा उसमें जो विभिन्न तरह का जीवन सृजन होता है वह नहीं पनप पाता।

इस तरह असंख्य जलचरों, विशेषकर मछलियों का जीवन आधार नष्ट हो रहा है। प्रायः बड़े बांधों पर कुल विमर्श महज इस संदर्भ में होता है कि जो भूमि जलमग्न होती है उससे कितने लोग विस्थापित होते

यमुना नदी के उदाहरण से समझा जा सकता है। पर्वतीय जलग्रहण क्षेत्र से मैदानी इलाके में प्रवेश करने के बाद इस नदी का अधिकांश जल सिंचाई या अन्य जरूरतों को पूरा करने के लिए नहरों के माध्यम से अलग मोड़ दिया जाता है। इस तरह नदी के प्राकृतिक मार्ग के लिए बहुत कम जलधारा बचती है, जिस पर उसमें भी गंदगी छोड़ी जाती है। बेहद कम जल–धारा रह जाने से नदी अपनी प्राकृतिक प्रक्रियाओं को पूरा नहीं कर पाती है तथा उसमें जो विभिन्न तरह का जीवन सृजन होता है वह नहीं पनप पाता।

किसी भी नदी के पर्यावरण की रक्षा के लिए जितने प्रवाह की आवश्यकता है उसे तय किया जाए तथा हर हालत में उसको बना कर रखा जाए। नदियों से पानी मोड़ने की उस हद तक ही अनुमति दी जाए जो कि नदी के पर्यावरणीय प्रवाह की सीमा से अधिक न हो। अब ऐसी नदियां कम ही बची हैं जिनमें प्राकृतिक प्रवाह बिना किसी बड़ी बाधा के कायम है।

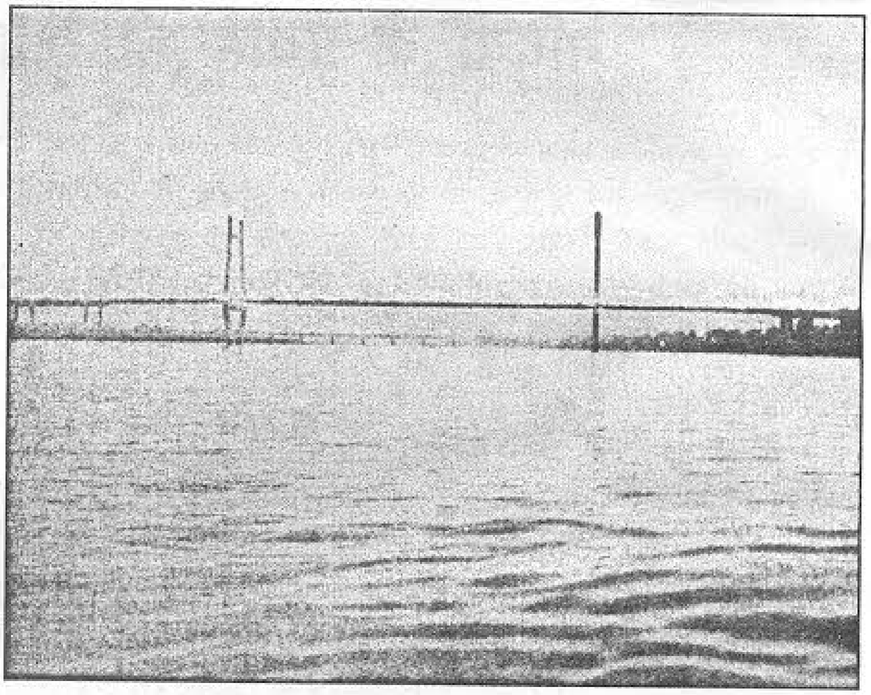

हैं। निश्चय ही यह बहुत महत्वपूर्ण मुद्दा है, पर साथ ही इस विषय पर भी समुचित ध्यान देना जरूरी है कि नदी के नीचे के बहाव पर, उसमें पनप रहे जीवन पर व आसपास के लोगों पर इसका क्या प्रतिकूल असर पड़ता है। नदी में पानी बहुत कम रह जाने का प्रतिकूल प्रभाव तो पड़ता ही है, कभी–कभी बांध से पानी अचानक बहुत बड़ी मात्रा में छोड़े जाने पर दुष्परिणाम व्यापक होता है।

नदी के स्तर में इस तरह का कृत्रिम उतार–चढ़ाव न केवल आसपास के लोगों के लिए खतरा पैदा करता है, अपितु नदियों में पनपने वाले कई तरह के जीवन के लिए तो यह और भी नकारात्मक है।

नदियों पर बांध– बैराज बन जाने से उन मछलियों पर विशेष असर पड़ता है जो प्रजनन के लिए विशेष स्थानों पर जाती हैं। मार्ग अवरुद्ध हो जाने से उनका पूरा जीवन चक्र संकट में पड़ जाता है।

नदी के साथ बहकर उपजाऊ मिट्टी खेतों में पहुंचती है, यह प्रक्रिया भी बांधों के चलते अवरुद्ध हो जाती है। साथ ही इस कारण भूमि का कटाव करने की नदी की क्षमता कई स्थानों पर बढ़ जाती है। इसके अलावा सूखे दिनों में आसपास के गांवों के कुओं में पानी बहुत कम होने से जल संकट विकट हो सकता है।

नदी के स्तर में इस तरह का कृत्रिम उतार–चढ़ाव न केवल आसपास के लोगों के लिए खतरा पैदा करता है, अपितु नदियों में पनपने वाले कई तरह के जीवन के लिए तो यह और भी नकारात्मक है। नदियों पर बांध–बैराज बन जाने से उन मछलियों पर विशेष असर पड़ता है जो प्रजनन के लिए विशेष स्थानों पर जाती हैं। मार्ग अवरुद्ध हो जाने से उनका पूरा जीवन चक्र संकट में पड़ जाता है।

इन अनुभवों को ध्यान में रखते हुए यह मांग जोर पकड़ रही है कि किसी भी नदी के पर्यावरण की रक्षा के लिए जितने प्रवाह की आवश्यकता है उसे तय किया जाए तथा हर हालत में उसको बना कर रखा जाए।

नदियों से पानी मोड़ने की उस हद तक ही अनुमति दी जाए जो कि नदी के पर्यावरणीय प्रवाह की सीमा से अधिक न हो। अब ऐसी नदियां कम ही बची हैं जिनमें प्राकृतिक प्रवाह बिना किसी बड़ी बाधा के कायम है।

ऐसी नदियों के माध्यम से ही पर्यावरण व जीवन–प्रक्रियाओं को सही ढंग से समझा जा सकता है। ऐसे में इन नैसर्गिक स्वरूप में बची नदियों के प्राकृतिक प्रवाह की रक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। साथ ही जिन नदियों का प्रवाह अवरुद्ध हो चुका है, उनमें अनिवार्य जल प्रवाह को बनाए रखने के लिए जरूरी कदम उठाना जरूरी है।❑

पानी के लिए दादागिरी

चीन में ऐसी नदियां सर्वाधिक हैं जिसकी जल धाराएं दूसरे–तीसरे देशों में जाती हैं। यहां कि नदियां रूस, भारत, पाकिस्तान, नेपाल, कजाकिस्तान आदि देशों से गुजरती है। इनमें कुछ के नाम हैं – मेकोंग, अरुण, सलवीन, ब्रह्मपुत्र, इरटिश, इली और अमुर जैसी नदियां प्रमुख हैं। भारत का सबसे बड़ा जलस्रोत माना सरोवर पर चीन पहले से ही कब्जा कर रखा है. . .पानी के लिए इजरायल की दादागिरी जगजाहिर है। इजरायल अपने ज्ञात जल संसाधनों से पंद्रह प्रतिशत अधिक खर्च प्रतिवर्ष करता आ रहा है। वह पश्चिमी तट और गाजा पट्‌टी के नीचे स्थित नदी का ताजा पानी का चालीस प्रतिशत जल ले लेता है।

■ उमेश प्रसाद सिंह

मानव जीवन के सबसे अधिक उपयोगी पदार्थ पानी के लिए अनेक देश दादागिरी पर उतर आए हैं। इनमें प्रथम नाम चीन का है। अपने पड़ोसियों के साथ बर्बरतापूर्ण संबंधों के लिए चीन पहले से ही बदनाम है। विश्व के अन्य देशों के विपरीत वह किसी भी देश के साथ जल समझौता नहीं किया है। चीन में ऐसी नदियां सर्वाधिक हैं जिसकी जल धाराएं दूसरे–तीसरे देशों में जाती हैं। यहां कि नदियां रूस, भारत, पाकिस्तान, नेपाल, कजाकिस्तान आदि देशों से गुजरती है। इनमें कुछ के नाम हैं – मेकोंग, अरुण, सलवीन, ब्रह्मपुत्र, इरटिश, इली और अमुर जैसी नदियां प्रमुख हैं। भारत का सबसे बड़ा जलस्रोत माना सरोवर पर चीन पहले से ही कब्जा कर रखा है।

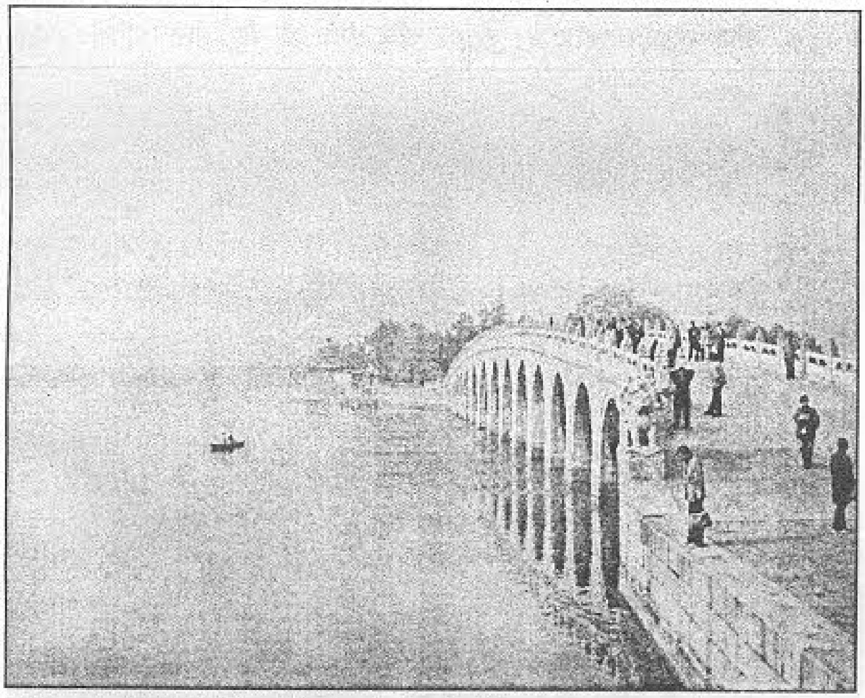

चीन सभी अंतर्राष्ट्रीय नदियों पर बडे–बड़े बांध बना कर उनका राष्ट्रीयकरण करना चाहता है। वह इन नदियों को हथियार बनाकर अपने पड़ोसी देशों पर नकेल कसना चाहता है। अब तक दुनिया के किसी भी देश में इतने बांध नहीं है जितना अकेले चीन में हैं।

विश्व के लगभग 60 हजार बांधों में तीस हजार बांध अकेले चीन में हैं। मेकोंग नदी पर उसका नवीनतम बांध पेरिस के एफिल टावर से भी ऊंचा है। चीन जिन देशों के साथ जल विवाद में उलझा है उनमें रूस और भारत जैसे बड़े देश हैं तो उत्तर कोरिया और म्यांमार जैसे छोटे देश भी हैं।

पड़ोसी देश नेपाल चीनी विस्तारवाद का शिकार है। इससे भारत पर खतरा बढ़ गया है। भारत का एक प्रमुख नदी कोसी का उद्‌गम स्थान तिब्बत है। यह नदी तिब्बत के पठारों से 65 किलोमीटर की यात्रा कर नेपाल की राजधानी काठमांडू के पूर्वोत्तर क्षेत्र से हिमालय पर्वत की शृंखला पार कर बिहार में प्रवेश करती है। तिब्बत में इस नदी का नाम मोट है। चीन

विश्व के लगभग 60 हजार बांधों में तीस हजार बांध अकेले चीन में हैं। मेकोंग नदी पर उसका नवीनतम बांध पेरिस के एफिल टावर से भी ऊंचा है। चीन जिन देशों के साथ जल विवाद में उलझा है उनमें रूस और भारत जैसे बड़े देश हैं तो उत्तर कोरिया और म्यांमार जैसे छोटे देश मी हैं।

की वक्र दृष्टि इस नदी पर भी है।

आने वाले वर्षों में चीन, नेपाल के भूगोल को तिब्बत जैसा करने का प्रयास कर सकता है यदि वह सफल हो जाएगा तो नेपाल से निकलकर भारत भूमि को हरा भरा बनाने वाली आधा दर्जन नदियों के जल से भारत को निराश होना पड़ सकता है।

इन नदियों में पनार, बकरा, कवल, वंकई, महानन्दा और दाऊक प्रमुख हैं। पानी को लेकर भारत और पाकिस्तान में विवाद काफी लम्बे समय से चलता आ रहा है। जब पाकिस्तान में सूखा हो जाता है तब वह आरोप लगाता है कि भारत ने पानी नहीं दिया। जब बाढ़ आती है तब कहता है कि भारत ने ज्यादा पानी छोड़ दिया।

लाहौर से प्रकाशित 'द नेशन' ने लिखा है कि 'कसूर जिला में भयंकर बाढ़ के पीछे भारत का हाथ है। उसने सतलुज नदी में सत्तर हजार क्यूसेक ज्यादा पानी छोड़ दिया है। इससे कसूर जिला को बाढ़ से जान–माल की भारी क्षति उठानी पड़ रही है। खड़ी फसलें बर्बाद हो गई। कश्मीर में भारत अनेक बड़ी बांध योजनाएं स्थापित कर रहा है।' इसी अखबार ने पिछले वर्ष सूये की स्थिति में ठीक ऐसा ही संपादकीय लेख लिखा था। बांग्लादेश की स्थिति इससे भिन्न नहीं है। यहां छोटी बड़ी चौवन नदियां भारत और बांग्लादेश की सीमा को छूती है। इसमें तीस्ता नदी के पानी बंटवारे पर खींचातान लम्बे समय से चल रहा है। फिलहाल केवल 1996 में गंगा जल बंटवारा से ही दोनों देश बंधे हुए हैं।

अरब देशों में पानी के लिए हमेशा हाहाकार मचा रहता है। वहां की प्रसिद्ध फरात नदी के पानी को विभिन्न देश अपने–अपने क्षेत्रों में घेर रखे हैं। इससे इस नदी का अविरल धारा अवरूद्ध हो गया है। यहां की तीन प्रमुख नदी व्यवस्थाओं – नील–दलजा, फरात और जोर्डन नदियों के जल वितरण को लेकर विभिन्न देश आपस में भिड़ते रहते हैं। मिश्र की सबसे बड़ी समस्या नील नदी की पानी के सुरक्षा की है। उसका पडोसी देश इथोपिया नील नदी के पानी पर दावा ठोकता रहता है। नील नदी के एक शाखा नीली नील का उदगम स्थान इथोपिया में है। यदि इथोपिया नदी का आधा भाग का पानी का उपयोग शुरू कर देता तब मिश्र युद्ध छेड़ सकता है।

पानी के लिए इजरायल की दादागिरी जगजाहिर है। इजरायल अपने ज्ञात जल संसाधनों से पंद्रह प्रतिशत अधिक खर्च प्रतिवर्ष करता आ रहा है। वह पश्चिमी तट और गाजा पट्टी के नीचे स्थित नदी का ताजा पानी का चालीस प्रतिशत जल ले लेता है। इस समय इजरायल स्थानीय महाशक्ति के रूप में अपनी ताकत के बल पर जहां से जितना पानी चाहता है ले लेता है। यह बात अरब देशों को पसंद नहीं है।

दुनिया भर में जितना पानी है उसका 70 प्रतिशत खेतों में अनाज पैदा करने पर खर्च होता है शेष बीस प्रतिशत पानी उद्योग धंधों पर खपता है सिर्फ 10 प्रतिशत पानी मनुष्य के पीने, नहाने, सफाई आदि पर खर्च होता है।

दुनिया भर में जितना पानी है उसका 70 प्रतिशत खेतों में अनाज पैदा करने पर खर्च होता है शेष बीस प्रतिशत पानी उद्योग धंधों पर खपता है सिर्फ 10 प्रतिशत पानी मनुष्य के पीने, नहाने, सफाई आदि पर खर्च होता है।

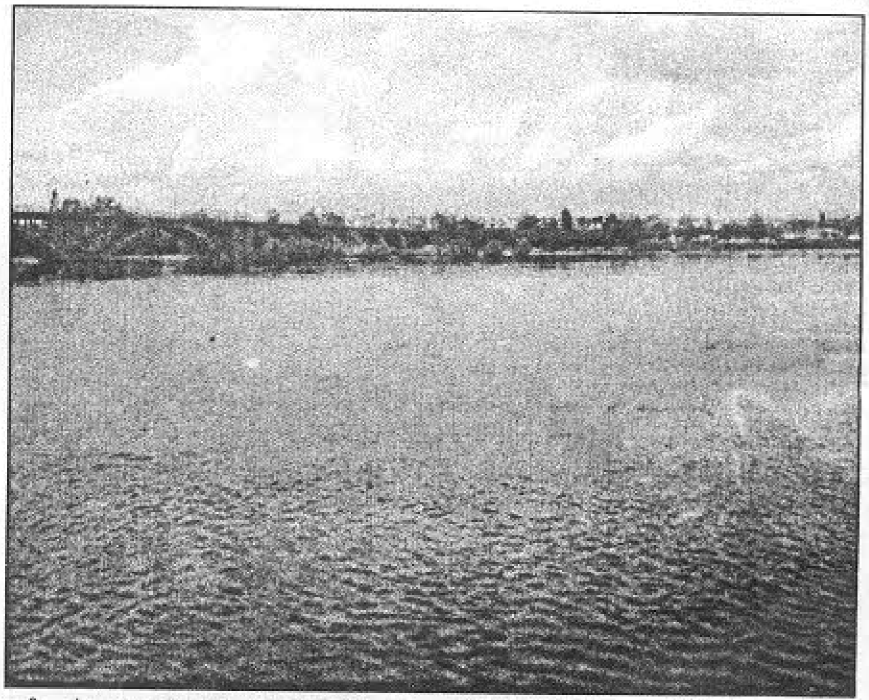

उपलब्ध आंकड़ों से पता चलता है कि विश्व में एक अरब लोगों को शुद्ध जल उपलब्ध नहीं है। एशिया के सभी प्रमुख देश आज पानी के लिए दादागिरी कर रहे हैं। निकट भविष्य में पानी के लिए युद्ध छिड़ जाए तो कोई आश्चर्य नहीं। ❑